हमारी माताएँ

दिनेश कुमार शर्मा

भोला—
सुजान—
की तरह

हमारी माताएँ

(कुछ भारतीय राजपूत रमणी-रत्नों की रोचक, शिक्षा-प्रद गाथाएँ)

लेखक

दिनेश कुमार शर्मा

प्रकाशक

नारायण प्रकाशन मन्दिर,

कमच्छा, वाराणसी-१ ।

प्राप्ति स्थान :—
इंडियन बुक-शॉप,
थियोसोफिकल सोसाइटी,
वाराणसी—१।

प्रथम संस्करण .... अक्तूबर १९५९।

मूल्य : १ रु० २५ न० पै०।

मुद्रकः—
मन्नीलाल
रस्तोगी प्रेस,
मध्यमेश्वर, वाराणसी।

विषय–सूची

समर्पण

प्रिय बहन आगनेस

को

दिनेश कुमार शर्मा

परिचय

जाति, राष्ट्र या मानव वंश की आद्य शक्ति मातृत्व में सन्निहित है। भारत राष्ट्र की गरिमा मूलतः माता रही है, माता ही हमारे राष्ट्र की संस्कृति और संस्कारों की आधार भूमि है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के मध्य-युगीन इतिहास की कतिपय नारियों का जीवन-वृत्त उपस्थित किया गया है, हमारा मध्य-युगीन इतिहास हमारे लिये आधार भूत प्रेरणा-स्रोत है। इस युग के भारतीय जनों में लाख-लाख विकृतियों के बावजूद जो शौर्य, उत्कटता, उत्सर्ग आदि की भावनाएँ थीं, वे अपने निजत्व में बड़ी ही गौरव-शाली हैं और निःसन्देह ही इसमें भारतीय नारी का योगदान स्वतः अक्षुण्ण महत्व का रहा है। मध्य-युगीन इतिहास की भारतीय नारी हम सबके लिये अभी भी सर्वाधिक देदीप्यमान गरिमा है।

"हमारी माताएँ" पुस्तक बालक—बालिकाओं के दृष्टिकोण से लिखी गई है। इसमें चयन कुछ इस प्रकार किया गया है

कि उद्देश्य में समग्रता और व्यापकता आ सके। अतः भारतीय नारी के न केवल वीर-तत्व का मातृत्व अपितु प्रेम-तत्त्व, पत्नी-तत्व, धर्म-तत्व, संकल्प-तत्व आदि को भी सहज-भाव से स्थान दिया गया है।

"हमारी माताएँ" उपादेयता की दृष्टि से यथाशक्य उद्देश्य-गर्भित है—बस, हम तथा हमारी सन्तानें इस उद्देश्य को अपने में आत्मसात् कर सकें—यही सतत कामना है।

मान-मंदिर,
वाराणसी।

दिनेश कुमार शर्मा

शशिव्रता

जिस कन्या के कारण से दिल्ली और कन्नौज के प्रतापी नरेशों के मध्य शत्रुता की नींव पड़ी उसका नाम शशिव्रता था। वह देवनगर की राजकुमारी थी। जिस तरह तारामण्डल के बीच पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभायमान होता है, वैसे ही शशिव्रता रूपवती स्त्रियों के बीच अद्भुत सौन्दर्य और छवि के साथ शोभित होती थी। एक ओर वह बड़ी रूपवान थी। दूसरी ओर धर्म, बुद्धि, विवेक, विद्या में कुशल थी। प्रकृति ने इस स्त्री के मस्तिष्क को बहुत ही सूक्ष्म और प्रतिभाशाली बनाया था। वह चित्रकारी के गुण में निपुण थी। ईश्वर ने उसको काव्य के विषय में भी अच्छी प्रतिभा तथा ज्ञान दिया था। जब वह एकान्त अवस्था में बैठती थी तो प्रायः भजन, दोहे आदि रचा करती थी। खेद है कि समय के चक्र ने इस श्रेष्ठ नारी की कविता को सुरक्षित रखने का अवसर नहीं दिया। अन्यथा, जैसे मीराबाई के भजन और दोहे सबको प्रिय हैं, वैसे ही इस स्त्री के रचे हुये भजन और दोहे भी सबको प्रिय होते। शशिव्रता गान-विद्या और युद्ध-विद्या में भी पारङ्गत थी। जब उसके कोमल करों से काले नाग की तरह सनसनाते हुए तीर निकलते थे तो शेर भी काँप जाते थे।

जब राजकुमारी शशिव्रता युवा हुई तो माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई। देश-देश के राजाओं के चित्र मँगाये गये, और उनके कुल के वृत्तांत शशिव्रता को सुनाये गये। शशिव्रता ने उनमें से किसी के विषय में भी सम्मति प्रगट न की। पर उसके अज्ञानी पिता ने शशिव्रता की अनुमति के बिना ही कन्नौज के राजा जयचन्द के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय किया।

इसमें सन्देह नहीं कि राजा जयचन्द अपने समय का बड़ा प्रतापी, ऐश्वर्यवान और शक्तिशाली पुरुष था। कला-कौशल में भी वह बड़ा प्रसिद्ध था। उसके साथ किसी को युद्ध करने का साहस नहीं होता था। सब प्रकार के मनुष्य उसके दरबार में निवास करते थे। देवनागरी के अक्षर जो बड़े सुन्दर और अपनी विशेषता के लिए दुनियाँ भर में प्रसिद्ध हैं, इसी राजा जयचन्द के बनाये हुए हैं और सबसे पहले उसी के दरबार में प्रचार हुआ था।

जिस समय जयचन्द को मालूम हुआ कि देवनगर का राजा अपनी रूपवती कन्या उससे व्याहना चाहता है तो वह अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु ईश्वर को कुछ और ही स्वीकार था। शशिव्रता ने तो अपने मन में पृथ्वीराज को अपना पति वरण कर रखा था। यह निश्चय कई वर्षों पहले हो चुका था, और इसलिए पहली बार जब माता ने उसके विवाह का समा-

चार सुनाया तो वह धक सी रह गई। राजपूतनी की प्रतिज्ञा कैसे पलट सकती है? सूर्य चाहे पूर्व के स्थान में पश्चिम में निकले। सुमेरु पर्वत पर चाहे समुद्र लहराने लगे, यह सम्भव हो, तो, हो; परन्तु सच्ची राजपूतनी, सच्ची राजकन्या, सच्ची क्षत्रिय लड़की अपनी प्रतिज्ञा को नहीं पलट सकती। मनुष्य एक ही बार उत्पन्न होता है, एक ही बार मरता और एक ही बार जीता है। जीवन के पवित्र संकल्प को बार-बार बदलते रहना उचित नहीं है। आकाश और भूमि चाहे पलट जाय, परन्तु मन में जो ठन चुकी है वह कभी नहीं पलटेगी। वह कुछ दिनों तक मन-ही-मन में विचार करती रही। कोई उपाय समझ में नहीं आया। जयचन्द बलवान था, उसका पिता दुर्बल था, उसमें साहस नहीं था कि वह जयचन्द का सामना करता। इस के सिवाय वह अपने वचन को भी पलट नहीं सकता था। राजपूत का वचन उसके प्राण के साथ रहता है।

अन्त में, शशिव्रता ने सोच विचार कर गुप्त रीति से पृथ्वीराज को पत्र लिखा, क्योंकि उसकी जीवन नौका को पार लगाने वाला केवल वही था। पत्र बड़ी दीनता और प्रीति के साथ लिखा हुआ था। उसमें लिखा था कि जिस प्रकार रुक्मिणी को शिशुपाल के हाथ से श्रीकृष्णजी ने बचाया था, उसी प्रकार आप मुझे आकर बचा ले जावें।

समय थोड़ा था। देवनगर का राजा विवाह की प्रारम्भिक रीति को पूर्ण कर चुका था, और विवाह की तैयारियाँ हो रही

थीं। जिस मनुष्य के द्वारा शशिव्रता ने दिल्लीपति पृथ्वीराज को पत्र भेजा वह एक वृद्ध ब्राह्मण साधु था। वह राजकुमारी का पत्र लेकर दिल्ली पहुँचा। परन्तु पृथ्वीराज दिल्ली में नहीं था। अजमेर गया हुआ था। ब्राह्मण साधु पृथ्वीराज का पता लगाता हुआ अजमेर भी पहुँच गया। परन्तु वहाँ भी उसको पृथ्वीराज न मिला। वह बहुत घबड़ाया। परन्तु बड़ा धैर्यवान था, इसलिए फिर साहस किया और खोज लगाता हुआ अचलगढ़ की ओर जा पहुँचा। वहाँ उसकी पृथ्वीराज से भेंट हो गई। वीर सम्राट पृथ्वीराज चौहान अपने कवि चन्द्रवरदायी तथा एक सेनापति रामराय नूजर के साथ आ रहा था। क्योंकि वहाँ के राजा जितैसी परमार की लड़की ने भी उसको इसी प्रकार पत्र लिखकर अपनी सहायता के लिये बुलाया था। पृथ्वीराज इस स्वयंम्बर को जीतकर अपने सरदारों और नई रानी के साथ दिल्ली वापस जा रहा था। ब्राह्मण ने उसको देखते ही उच्च स्वर के साथ घोड़ा थामने की प्रार्थना की। पृथ्वीराज ठहर गया। ब्राह्मण ने झट-पट शशिव्रता का पत्र पृथ्वीराज के हाथ में दिया। पृथ्वीराज पत्र पढ़कर मुस्कुराया और पत्र को चन्द्रवरदायी के हाथ में देकर पूछा, अब क्या करना चाहिये? पृथ्वीराज ने बहुत कुछ सोचा, बेचारा क्या कहता क्या न कहता। वह जयचन्द के साथ लड़ाई करना उचित नहीं समझता था। परन्तु निर्बल स्त्री की सहायता न करना, क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध था। अधिक सोचने-विचारने का समय नहीं था।

निदान्, चन्द्रवरदायी ने सलाह दी कि देवनगर को पहुँचना चाहिए। परन्तु, पृथ्वीराज ने कहा कि यदि शशिव्रता अपनी प्रतिज्ञा को बदल दे, तो क्या आवश्यकता है कि व्यर्थ लड़ाई की जाय। इसलिए पृथ्वीराज ने ब्राह्मण से कहा, "देवता! तुम जाकर राजकुमारी को समझा दो कि इसमें कई वंशों के नाश होने की सम्भावना है। वह अपनी प्रतिज्ञा बदल दे, इसके अतिरिक्त मैं इच्छिन कुमारी के साथ विवाह भी कर चुका हूँ।"

अपनी ओर से उसने ब्राह्मण को समझा-बुझाकर देवनगर की ओर भेज दिया, और अपने साथियों समेत स्वयं भी गुप्त रीति से उसके पीछे-पीछे चला। क्योंकि, वह क्षत्रानियों की प्रतिज्ञा को जानता था। साथ ही उसने अपने प्रसिद्ध सेनापति को देवनगर पहुँचने का पत्र लिख भेजा।

इधर जयचन्द भी बहुत बड़ी सेना लिए देवनगर को जा रहा था। किन्तु, पृथ्वीराज उससे पहले पहुँचा। संयोग से शशिव्रता का वही दूत फिर राजकुमारी का पत्र लिए हुए पृथ्वीराज को मिला। पृथ्वीराज ने पत्र को दूत के हाथ से ले लिया। पत्र पद्य (ऩज़्म) में था। पत्र की रचना बड़ी सरल और हृदयस्पर्शी थी। जिन शब्दों में शशिव्रता ने अपने आन्तरिक भावों का वर्णन किया था, उन्हें किंचित परिवर्तन के पश्चात् हम यहाँ अंकित करते हैं:—

दोहा—पाँच सात लाघन करे, सिंह घास नहीं खाय।
टेक न छांड़े शूरमा, सती परन नहिं जाय॥

वरु बरसै विष चन्द्रमा, वरु सुमेरु बहि जाय।
तेज घटै वरु भानु को, सती परन नहिं जाय ॥
उलट जाय ब्रह्माण्ड वरु, ईश करैं अन्याय।
सत विहीन वरु हो मही, सती परन नहिं जाय ॥
पपिहा प्यासा स्वाति का, अन्य न नीर सुहाय।
दुख-सुख सिर ऊपर सहै, सती परन नहिं जाय ॥
हांड़ गलै माटी मिलै, देह भस्म हो जाय।
सुरति न बिसरै पीव की, सती परन नहिं जाय ॥

पत्र के पढ़ते ही पृथ्वीराज का चेहरा आवेश से लाल हो गया। राजकुमारी के हृदय से जो विद्युत जैसे भाव निकल कर आये थे उन्होंने वीर चौहान के हृदय को जड़ से हिला दिया। आगे—

मणि का मोल महीपति जानै, अथवा रत्न बिसाही।
ईश की महिमा साधू जानै, और से जानि न जाही ॥

यद्यपि चन्द्रवरदायी स्वयं महाकवि था, परन्तु शशिव्रता की वाणी को पढ़कर वह भी चकित रह गया। दिल्ली-पति के साथियों ने अपने अपने घोड़ों को ऐड़ लगाई और तुरन्त देवनगर में जा पहुँचे। जयचन्द की सेना धीरे-धीरे कूच कर रही थी, इसलिये जयचन्द वहाँ देर से पहुँचा। पृथ्वीराज ने उस ब्राह्मण की सहायता से राजकुमारी को मरदाने वस्त्र पहना कर घोड़े पर सवार किया और दिल्ली का मार्ग लिया। जिस चतुरता के साथ यह कार्यवाही की गई उसका वर्णन व्यर्थ है।

जब जयचन्द् देवनगर में पहुँचा तो वहाँ शोक छाया हुआ था। यह बात चारों ओर फैल गई थी कि राय पिथौरा शशिव्रता को भगा ले गया। जयचन्द् को विश्वास नहीं आया। उसने समझा कि देवनगर के राजा ने जान बूझ कर मेरे साथ ऐसा किया है, और इस अपमान का बद्ला लेने के निमित्त उसने देवनगर को तहस-नहस करने का निश्चय किया, और इस बात की उसने अपने सेनापति को आज्ञा दे दी। परन्तु, ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था। जिस समय जयचन्द् की सेना ने देवनगर पर आक्रमण करना चाहा, ठीक उसी समय पृथ्वीराज का सेनापति चौमुण्ड राय अपने शूरमाओं सहित वहाँ पहुँच गया और जयचन्द् की सेना को ऐसा छकाया कि वह बहुत ही लज्जित होकर कन्नौज की ओर लौट गया, और वह मन-ही-मन पृथ्वीराज से बद्ला लेने के उपाय सोचने लगा। कुछ दिनों के पश्चात् जयचन्द् ने अपनी बेटी संयोगिता के स्वयंबर की तैयारी कर दी। इस स्वयंबर में पृथ्वीराज को घोर अपमानित किया गया। और पृथ्वीराज ने फिर जयचन्द् को छकाया और उसकी पुत्री संयोगिता को कन्नौज से हर कर अपने महलों में ले गया।

शशिव्रता दिल्ली आई। सबसे पहले वह इच्छिन कुमारी से मिली। फिर, अपनी सास कमला देवी के पाँव पड़ी। इच्छिन कुमारी और शशिव्रता बहनों की तरह रहती थीं। इनमें न

शत्रुता थी न ईर्षा-द्वेष। दोनों अपने पति की सेवा को अपना धर्म समझती थीं और इन्होंने राजमहल को स्वर्ग धाम बना रक्खा था।

शशिव्रता भारत के इतिहास में इसलिए अमर है कि उसके हृदय का एक बार का किया हुआ संकल्प लाख-लाख विपत्ति आने पर, अन्त तक एक ही रहा और उसने जिस वीर पुरुष को वरण किया, उस पर अपने तन, मन, धन को न्यौछावर कर डाला।

भानुमती

हल्दी घाटी के युद्ध के पश्चात् हिन्दू-पति महाराणा प्रताप की दशा बहुत विचित्र हो गई थी। वह रात-दिन जंगलों और पहाड़ों में छिपा फिरता था। हजारों सच्चे वीर योद्धा काम आ चुके थे। मेवाड़ के सारे किले एक-एक करके अकबर के हाथ जा चुके थे और अकबर की फ़ौज उसका इस प्रकार पीछा करती थी कि जैसे शिकारी कुत्ते हिरन अथवा व्याघ्र के पीछे भागते फिरते हैं। कष्ट-पर-कष्ट और विपत्ति-पर-विपत्ति उसके सिर पर आई। कई दिन और रातें लगातार जागते गुज़र जाती थीं और एक सूखी रोटी का टुकड़ा उस के मुख में न पड़ता था। राजा और रानी तथा उनके छोटे-छोटे बच्चे और मेवाड़ के सभी राजपूत दुख और क्लेश सहन करते थे, परन्तु अकबर की अधीनता से सबको घृणा थी। शरीर को एक-न-एक दिन मरना है मर जाय, आत्मा पर किसी का वश नहीं चलता, वीर राजपूत इस नियम पर अन्तिम क्षण तक चलते थे।

जब राणा प्रताप बहुत लचार हो गये तो उन्होंने अपनी प्रजा को आज्ञा दी कि मेवाड़ को उजाड़ हो जाने दो, यहाँ कोई मनुष्य न रहे। सब लोग मेरे साथ पर्वत पर चलो, वहाँ स्वाधीनता के साथ रहेंगे। प्रताप का यह निश्चय इसलिए था

कि जो प्रदेश वीरान ही वीरान होगा, आदमी एक न होगा, मुगल सेना यदि उसे जीत भी ले तो यह महत्वपूर्ण कार्य नहीं होगा। जिस जंगल में उस समय प्रताप रहते थे उसमें यह आज्ञा सबको सुनाई गई। सबने उनकी आज्ञा सिर आँखों पर ली और उसे पालन किया। सब मेवाड़ के नगरों को छोड़कर पहाड़ की चोटियों पर जा बसे। प्रताप ने आज्ञा दी कि पहाड़ के नीचे कोई पशु भी चराने न आवे। क्योंकि हमारे पशु भी यवनों के हाथों में न जाने पावें। सब लोगों ने इस आज्ञा को भी स्वीकार किया। परन्तु एक गड़ेरिया ने इसका पालन नहीं किया। वह पर्वत के नीचे तराई में अपनी भेड़ बकरियों को लेकर चराया करता था। इस अपराध के कारण महाराणा के साथियों ने उसको मारकर एक वृक्ष से लटका दिया ताकि फिर किसी को महाराणा की आज्ञा भंग करने का साहस न हो।

यह गड़ेरिया बूढ़ा था। तीसरे दिन उसके दामाद मंगला ने भी इसी प्रकार की मूर्खता की और महाराणा के विरुद्ध अपमानजनक व्यवहार किया। प्रताप के सरदारों ने उसको भी कैद किया और बध किये जाने की आज्ञा दी। यह बात चारों ओर तुरन्त फैल गई। सबको निश्चय हो गया कि मंगला अवश्य मारा जायगा, परन्तु सब चुप थे। किसी में साहस नहीं था कि महाराणा के विरुद्ध जीभ हिला सके। जिस समय यह वृत्तांत भानुमती ने सुना तो वह बहुत दुखित हुई और बड़ी देर तक रोती रही। उसका भाई शेरा जिसकी आयु सत्तरह अठारह

वर्ष की थी अपनी बहिन के विलाप को सहन न कर सका। पहले ही उसे पिता के वृक्ष से लटकाये जाने का शोक था और इसी घात में था कि अवसर मिले तो पिता की लाश को उठा लावे। किन्तु, मौका नहीं मिला था। जब उसने बहनोई के कैद होने की खबर सुनी, और अपनी बहिन को रोते हुए देखा तो उसने कसम खाई कि मैं राणा को मारे बिना कदापि चैन न लूँगा। उसने अपनी बहिन से कहा, "तू धैर्य रख, मैं किसी न किसी प्रकार प्रताप के पास पहुँचकर उसका काम तमाम करूँगा, वह कभी मेरे हाथ से जीता न बचेगा।"

भानुमती यद्यपि अनपढ़ थी, और धर्म-कर्म में भी बहुत प्रवीण नहीं थी। तथापि वह इतना अवश्य जानती थी कि राणा जाति का गौरव है। हिन्दुओं का मुकुट है। श्री रामचन्द्रजी का दुनियाँ में प्रतिनिधि है। कहाँ तो वह पति के शोक में आँसू बहा रही थी और कहाँ भाई की कसम सुनकर चुप हो गई और आँखों से आँसू पोंछकर भाई से कहने लगी, "शेरा! राणा के विषय में ऐसे शब्द मुख से नहीं निकालने चाहिये। मैं चाहे विधवा हो जाऊँ, परन्तु यह कभी उचित नहीं है कि कोई मनुष्य राजा को हानि पहुँचावे। मेरे पति जैसे लाखों मनुष्य उस पर न्यौछावर हैं। मेरे शरीर की खाल उतार कर यदि उसके पाँव की जूतियाँ बनाई जावे तो भी मैं सहन कर लूँगी। परन्तु राणा पर कभी जान बूझ कर आँच न आने दूँगी। क्या तू नहीं

जानता कि महाराणा प्रताप मेवाड़ देश और सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा हिन्दू जाति के शिरोमणि हैं।"

शेरा बोला, "चाहे कुछ भी हो, मैं परसों किसी न किसी प्रकार अवश्य प्रताप को अपने तीर का निशाना बनाऊँगा। मैं जानता हूँ वह किस जगह छिपा हुआ रहता है। मैं जानता हूँ वह कब और कहाँ से गुज़रता है। उसने मेरे पिता को बध कराया। उसकी लोथ भी मुझको नहीं मिली। अब वह मेरे बहनोई को भी बध करवाना चाहता है। मैं उसका अवश्य बध करूँगा। परसों दोपहर के समय अवश्य उसका काम तमाम करूँगा। मुझको बिना उसके मारे हुए चैन नहीं आवेगा।" भानुमती ने भाई को बहुत समझाया। परन्तु वह जिद्दी था, अपने वचन से नहीं हटा। उसने कहा, "चाहे मुझको संसार पापी, राजद्रोही क्यों न कहे परन्तु मैं प्रताप को मारकर चैन लूँगा।" भानुमती अपने भाई के क्रूर स्वभाव को जानती थी इसलिये चुप हो गई। उससे कुछ नहीं बोली, परन्तु अपने मन में ठान लिया कि चाहे जो कुछ हो प्रताप को हानि न पहुँचने पावे। शेरा अपने तीर कमान लेकर उसी समय पहाड़ी की ओर चल पड़ा जिधर महाराणा रहते थे। जिस गाँव में शेरा रहता था वहाँ से राणा का निवास स्थान दो मंजिल के फ़ासले पर था।

भानुमती अपने जी में डर गई कि कहीं ऐसा न हो कि अचानक धोखे से महाराणा प्रताप उसके भाई के हाथ से मारे

जायँ। वह महाराणा के प्रति गहरी श्रद्धा रखती थी। वह अपने दुःख-क्लेश भूल गई और चिन्ता करने लगी कि वह प्रताप के प्राणों की रत्ता किस प्रकार करे। उसने अपने छोटे भाई को सारी स्थिति बतलाई और प्रार्थना की कि राणा को रत्ती भर भी हानि न पहुँचाने पावे। उसने बहिन का कहना मान लिया और एक राजपूत से जो उसका मित्र था दो घोड़े माँगने गया। गरीब गड़ेरिये को घोड़े कौन देने लगा, राजपूत ने घोड़े नहीं दिए। भाई ने अपनी बहन को घोड़ा न पाने का हाल कह सुनाया। तब बहिन ने बताया कि समय बहुत थोड़ा है, जिस प्रकार से हो सके घोड़े लाने चाहिये। भाई ने वैसा ही किया। रात के समय जब सब सो रहे थे तो वह राजपूत के घोड़े खोल लाया। भानुमती ने तुरन्त मरदाना भेष बना लिया। और अपने भाई रतन के साथ घोड़े पर सवार हुई और रात के समय वहाँ से चल पड़ी। उस समय भारतवर्ष की दशा और ही प्रकार की थी, विशेष कर मेवाड़ प्रान्त की नीच जातियों तक की स्त्रियाँ को भी घोड़े की सवारी और हथियार चलाना आता था।

दोनों भाई-बहिन नदी-नाले लांघते हुए चल पड़े। रात बहुत अँधेरी नहीं थीं, तारे चमक रहे थे, दोनों भाई-बहिन तेजी के साथ जा रहे थे। भानुमती ने कहा, "भाई रतन! यदि मार्ग में कोई दुर्घटना हो जाय तो तुम मेरी चिन्ता न करना। तुम सीधे महाराणा के पास पहुँच कर उसे शेरा की दुष्टता से

सचेत कर देना, जब राजा की जान का भय हो तो सच्चे हिन्दू अपने प्राणों का भय नहीं करते।"

रतन ने कहा, "ईश्वर तेरी रक्षा करे, मुझसे जो कुछ हो सकेगा उससे मुँह न मोड़ूँगा, केवल इस बात की चिन्ता है कि कहीं शेरा हम से पहले न पहुँच जाय।"

भानुमती बाली, "हाँ संदेह तो अवश्य है, क्योंकि वह हमसे एक दिन पहले चल चुका था। तथापि हमारे पास घोड़े हैं, मुझको आशा है कि मैं उससे पहले वहाँ पहुँच जाऊँगी। भाई रतन मुझको रानी पद्मावती के दर्शनों की भी बड़ी इच्छा है, मैं उनको देखकर प्रसन्न हूँगी और कौन जाने महारानी हमारी सहायता कर सकें।"

रतन ने कहा, "ईश्वर सब कुछ कर सकता है, देखो क्या होता है।" इस प्रकार बात-चीत करते हुए दोनों कई कोस निकल गये। संयोग से आकाश पर काली घटा छा गई और दम के दम में पानी बरसना आरम्भ हुआ। घटाटोप अन्धकार हो गया, हाथ को हाथ नहीं सूझता था। दोनों निराश हो गये। उनका साहस जाता रहा। वह बोले, परमात्मा! तू राणा की रचा करना। दोनों एक चौरी के नीचे ठहर गये, परन्तु उनको एक-एक चण एक-एक वर्ष के समान बीतता था। बेचारों की कुछ पेश नहीं आती थी, उस चौरी के समीप एक मंदिर भी था। भानुमती ने सुना कोई गाने वाला एक सुहावना गीत गा रहा है।

भानुमती ने समझा प्रभात होने वाली है इसलिये अपने भाई से कहा, भाई रतन उठो देर हो रही है। राणा का ध्यान करो, समय कम है, देखें परमात्मा क्या करते हैं। दोनों फिर सवार हुए, घोड़ों को सरपट छोड़ दिया, वह भी वायु वेग से उड़ चले, ऐसा प्रतीत होता था मानो घोड़े भी उनकी बातें समझ रहे हैं। पानी बरस रहा था, वायु सन-सन चल रही थी। थोड़ी देर में प्रभात का तारा प्रगट हुआ, सूर्य आँखों के सामने था।

दोनों के मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न हो रहे थे और शीघ्रता के साथ चले जा रहे थे। किन्तु बादल चुप था, वह आकाश-पाताल को एक कर रहा था। भानुमती थोड़ी देर के लिये अपने विचार में इतनी मस्त हो गई कि उसको अपने तन-मन की कुछ सुध नहीं रही। इसी अवस्था में उसका घोड़ा एक वृक्ष के पास से होकर गुज़रा, उसकी डाल के साथ लड़की का सिर ज़ोर से टकराया, घोड़ा वहीं खड़ा हो गया। रतन कुछ दूर आगे निकल गया था, परन्तु वह भी लौट आया। भानुमती के सिर में चक्कर आने लगा, सिर से रुधिर बह रहा था। उसने कहा, भाई रतन! मुझे बड़ी चोट लगी है। किन्तु, कुछ परवाह नहीं। तुम घाव को कस कर बाँध दो अन्यथा अब मुझमें चलने की सामर्थ्य न रहेगी। देखूँ महाराणा तक किस प्रकार पहुँचती हूँ। रतन ने बहिन को धैर्य दिया और अपनी पगड़ी फाड़ घाव को बाँध दिया और दोनों फिर चल पड़े।

घोड़े फिर तेजी से दौड़ने लगे और उसी प्रकार दौड़ते हुए उस पहाड़ के समीप पहुँचे जिसमें राणा प्रताप रहते थे। सिपाहियों ने इनको आगे बढ़ने से रोका। भानुमती बोली, तुम मत डरो हमारे पास हथियार नहीं है। राणा के प्राणों का भय है, हमको तुरन्त उनके पास पहुँचा दो, उसको भेद बतायेंगे।

भानुमती बहुत दुर्बल थी। उसको सिपाहियों के साथ जोर से बातचीत करनी पड़ी, उसके सिर से रक्त बहुत सा निकल चुका था इसलिए वह मूर्छित हो गई और उसका सिर लटक पड़ा। रतन और सिपाहियों ने उसको घोड़े पर से नीचे उतारा और राणा के पास ले गये।

रतन और भानुमती दोनों राणा के सामने पेश किये गये। रतन ने झुक कर राणा को प्रणाम किया। भानुमती बेसुध थी, ज्वर का वेग बढ़ रहा था। सिर के बाल बिखरे हुए थे। मुख से झाग बह रहा था। बेसुधी की दशा में उसके मुख से यह शब्द निकल रहे थे, "राणा को न मारो, राजद्रोह बुरा है, मैं विधवा रहूँगी, मुझको विधवा रहना पसन्द है, परन्तु राजा का वध होना पसन्द नहीं है। मेरे भाई ऐसा पाप न कर। कुछ परवाह नहीं यदि राणा ने पिता का वध करा दिया और अब तुम्हारे बहनोई का वध कराने वाले हैं। हम उनकी प्रजा हैं, हमारा जीवन उन्हीं के लिये है, तू राणा पर कभी हाथ न उठाना। राणा हिन्दू जाति के सूर्य हैं, हिन्दू धर्म के रक्षक

है।" इतना कह कर भानुमती चुप हो गई, प्रताप उसकी हालत को देखते और सोचते रहे। थोड़ी देर में उसने फिर अपना मुख खोला और बोली, "भाई रतन चलो, दो घोड़े चुरा लाओ, जल्द राणा को खबर दो, हम दोनों चल कर राणा को बता दें कि शेरा आपकी घात में बैठा है, चलो देर न करो।" इतना कह कर वह फिर चुप हो गई।

प्रताप ने समझा इस बात में ज़रूर कुछ-न-कुछ भेद है, उन्होंने रतन को सम्बोधन करके कहा, "तू कौन है और यह लड़की कौन है, और मुझसे यह क्या कहना चाहती है ?" रतन ने सब हाल साफ़-साफ़ कह दिया। राणा उसके कथन पर विचार करने लगे। इतने में भानुमती ने तीसरी बार फिर अपना मुख खोला "रतन ! मैं महारानी पद्मावती को देखूँगी वह हमारी माता हैं। मेरे धन्य भाग्य हैं कि मुझको राजमाता के दर्शन प्राप्त होंगे और मुझे आशा है कि वह मेरी सहायता करेंगी।" इतना कह कर वह फिर चुप हो गई और उसकी बोली बन्द हो गई। राणा ने वैद्यराज को आज्ञा दी कि उसका इलाज करें और उसको महारानी पद्मावती के खेमे में स्थान दिया गया, उसका घाव और रक्त धोकर दवाई लगाई गई।

उसी दिन दोपहर के समय राणा के सन्मुख एक मनुष्य पेश किया गया जो तीर कमान लिये हुए एक जगह पहाड़ी में छिपा हुआ था। राणा ने उसको पहरे में रक्खे जाने की आज्ञा दी।

दूसरे दिन भानुमती की दशा अच्छी हुई। उसने अपनी आखें खोलीं, और दो-चार सुन्दर स्त्रियों और बच्चों को अपने इर्द-गिर्द देख कर विस्मित हुई, और पूछने लगी "मैं कहाँ हूँ और आप लोग कौन हैं?"

एक स्त्री ने कहा, तू पहाड़ में है और रानी पद्मावती तेरे सामने बैठी हैं। रानी का नाम सुनना था कि वह हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई और पद्मावती के चरणों में अपना सिर रख कर बोली, "माता मुझको जल्दी राणाजी के पास ले चलिये मैं उनसे कुछ कहना चाहती हूँ।"

रानी बोलीं "पुत्री जो कुछ तू कहना चाहती है वह सब कुछ महाराणा ने सुन लिया है, उन्होंने तेरे पति का अपराध क्षमा करने का वचन दिया है, तू धैर्य रख तेरा पति तुझको मिल जायगा।"

रानी की बातें सुनकर भानुमती को बड़ी शान्ति मिली और उसने रानी के चरण छूकर अपनी कृतज्ञता का प्रकाश किया। जब भानुमती नहा-धो चुकी और खाने-पीने से छुट्टी पा चुकी तो उसको महाराणा के सन्मुख हाजिर होने का अवसर दिया गया। शेरा, मंगला, और रतन यह तीनों भी हाजिर थे। शेरा के हाथ-पाँव बँधे थे बाकी और सब के खुले हुए थे।

भानुमती सामने आई, महाराणा के चेहरे से राजसी तेज बरस रहा था। उन्होंने लड़की को बोलने का अवसर नहीं दिया।

अपने आप कहने लगे, "लड़की मैं तेरी राजभक्ति को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। जिस राजा की प्रजा उसको इतना प्यार करती हो उसके राज्य को कभी हानि नहीं पहुँच सकती। मैंने तेरे पति के अपराध को क्षमा किया, इसके अतिरिक्त तू जो और माँगेगी मैं उसके देने के लिये तैयार हूँ, माँग क्या माँगती है ?"

महाराणा का तेज और ऐश्वर्य देख कर लड़की सहम-सी गई। उसके मुख से केवल यह शब्द निकले "भाई की जिन्दगी और पिता की लोथ (लाश)।"

राणा ने कहा, "लड़की मैंने तेरी प्रार्थना स्वीकार की, और उसी क्षण सिपाहियों को आज्ञा दी कि शेरा की मुश्कें खोल दो, और गड़ेरिये की लाश इसको सौंप दो। राजपूत सरदारों ने शेरा के विरुद्ध कुछ कहना चाहा परन्तु राणा ने नहीं सुना। उन्होंने कहा, "बूढ़ा आज्ञा भङ्ग के अपराध में दण्ड पा चुका, जिस घर में भानुमती जैसी कन्या है उस घर से मुझे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। मेवाड़ मुझको प्यार करता है और अब मैंने सिन्ध की ओर जाने का इरादा त्याग दिया। मैं जीते जी मेवाड़ के लिये लड़ता रहूँगा, मेरा जीना-मरना सब मेवाड़ के लिये है।"

अभी महाराणा के वचन समाप्त नहीं होने पाये थे कि भामाशाह जैनी मेवाड़ का पुराना दीवान दरबार में हाजिर किया गया, यह कई पीढ़ी से मेवाड़ का महामंत्री था। उसने तीन बार झुक कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोला,

पृथ्वीनाथ ! हिन्दुओं के सूर्य !! मेवाड़ को आप की जुदाई बरदाश्त करने की शक्ति नहीं, मेरे बाप दादाओं ने बहुत सा धन एकत्र किया है और वह इतना है कि आप बारह वर्ष तक यथेष्ट सेना लेकर शत्रुओं से लड़ते रह सकते हैं। यह आपके चरणों पर निछावर है। मेवाड़ की आपसे अन्तिम प्रार्थना यह है कि एक बार कम-से-कम प्यारे मेवाड़ के लिये और उद्योग कर देखिये, आपकी और प्रजा भी तन मन धन से हाजिर है।

महाराणा ने मुस्कुरा कर कहा सचमुच ईश्वर की इच्छा ऐसी ही है। उन्होंने भानुमती को रुपया-पैसा देकर प्रसन्न किया और जिस गाँव में वह रहती थी वह गाँव भी उसे पुरस्कार में दे दिया। रतन, शेरा, और मंगला को सेना में भरती होने की आज्ञा दे दी। अकबरी सेना जो महाराणा का पीछा कर रही थी, वह रङ्ग-रलियाँ मना रही थी। उसे क्या पता था कि महाराणा की शक्ति बढ़ रही है, भामाशाह की सहायता और मेवाड़ी नवयुवकों की नई सेना लेकर वह अकबर की सेना पर टूट पड़े और गाजर मूली की तरह काट कर फेंक दिया। सब जगह यवनों की लाशों के ढेर लग गये। एक यवन भी जीवित न बचा। महाराणा ने उसी साल के भीतर२ सारा मेवाड़ अपने अधिकार में कर लिया और यवनों को वहाँ से मार कर निकाल दिया। केवल चित्तौड़ और अजमेर पर अकबर अपना अधिकार जमाए रहा।

लाजवन्ती

लाजवन्ती सम्राट अकबर के समय में हुई थी। अकबर का जन्म मुसलमान के घर में हुआ था, परन्तु वह अपनी आत्मा के विचार से हिन्दू था और यही कारण है कि उसने हिन्दुओं पर जय पाई। हिन्दू कभी किसी शत्रु से अब तक पराजित नहीं हुए थे। अकबर ने किसी सीमा तक बहुसंख्यक हिन्दुओं को आधीन बना लिया था। परन्तु यह कार्य उसने तलवार के बल से नहीं किया था वरन् उसमें हिन्दू आत्मा थी और उसके बल से उसने यह कार्य किया था।

जब उदय सिंह की रानी को निश्चय हो गया कि अब किले के सुरक्षित रहने की कोई आशा नहीं है तो उसने बचे-खुचे राजपूतों से साफ़ शब्दों में कह दिया कि अब चित्तौड़ के बचने की आशा नहीं है। वीर जयमल राठौर अचानक धोखे में अकबर के हाथ से मारा गया। उसके छोटे-छोटे बच्चे और लड़कियाँ मारी जा चुकीं तो जयमल की धर्म-पत्नी ने बहादुर राजपूतों को अपने हाथ से पान के बीड़े देकर मरने के लिये उद्यत किया और स्त्रियों को चिता पर सती होने के लिये आह्वान किया।

चित्तौड़ पर मुगल-आक्रमण का समाचार जंगल की आग की तरह फैल गई। ग्रामों के मनचले और बाँके क्षत्रिय देश और जाति के नाम पर बलि होने के लिये झुण्ड के झुण्ड एकत्र हुए। जिस-जिस शूरमा ने यह सुना वही चित्तौड़ के किले की दीवार के नीचे मरने के लिये हथियार बाँधकर चल पड़ा। किले का दरवाजा खोल दिया गया। शेर मरदों का दल समुद्र की लहरों की तरह उछलता हुआ यवन सेना की ओर आगे बढ़ा। दोनों ओर की फ़ौजें वीरता के साथ लड़ने लगीं। राजपूत संख्या में कम थे। यवन उनकी अपेक्षा बहुत अधिक थे। एक-एक राजपूत दस-दस बीस-बीस यवनों को मार कर आप भी जूझता था। अकबर दूर से खड़ा हुआ उनकी वीरता का तमाशा देखता था। उसके मुख से यह शब्द अनेक बार निकले कि, "यदि मेरे पास राजपूतों के दस-बीस रिसाले होते तो मैं दुनियाँ को सहज में विजय कर सकता।"

कई घंटों तक घमासान युद्ध होता रहा। संग्राम-भूमि घायलों और मुरदा मनुष्यों की लोथों से पट गई। चारों ओर रुधिर की धारें बहती हुई दिखाई देती थीं। आकाश में काग, और चीलें मँडरा रही थीं। "मारो मारो" के शब्द के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं देता था। उनमें बाजे-बाजे ऐसे शूरमा क्षत्रिय थे कि सिर कट चुकने पर भी उनके कबन्ध (अर्थात् सिर्फ धड़) हाथ में तलवार लिये हुए शत्रुओं को मारने के लिये दौड़ते फिरते थे। अनेक यवन इन कबन्धों के हाथ से मारे

गये। कबन्ध बिना सिर के लूह-लहान घड़ लिये हुए बड़े भयानक प्रतीत होते थे। कितने ही राजपूत शूरमाओं के कटे हुए सिर "मारो मारो" का घोष कर रहे थे। छः सात घंटे के पश्चात् सारे शूरमा स्वर्ग को पधार गए। उनमें से एक राजपूत ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार न की। इधर राजपूत शूरमाओं का इति श्री हुई उधर किले के भीतर से धुएँ की लपटें आकाश की ओर जाने लगीं। भयंकर धमाके का शब्द हुआ, उसी समय आग की ज्वलायें उठने लगीं। अकबर ने जान लिया कि राजपूत स्त्रियों ने भी जौहर किया और वह सब आग में जल मरीं। शीघ्रता के साथ वह किले में प्रविष्ट हुआ परन्तु उसके हाथ क्या आया ?

उजड़ा हुआ नगर, जली हुई इमारतें, जो हड्डियों और लोथों से भरी हुई थीं। यह हृदय-द्रावक दृश्य देखकर ज़ालिम की आँखों में आँसू भर आये। राज्य बढ़ाने के लोभ और प्रभुता के मद से संसार में कितना रक्तपात होता है। अकबर ने इस अवसर पर मरे हिन्दुओं की गिनती करने के लिए उनके जनेऊ उतरवाये और जब उनको तौला गया तो वह साढ़े चौहत्तर मन निकले। हिन्दू अब तक अपनी विशेष चिट्ठियों के लिफाफे पर साढ़े चौहत्तर (७४॥) का अंक लिख देते हैं ताकि सिवाय उस मनुष्य के कि जिसके नाम यह पत्र लिखा गया है कोई दूसरा मनुष्य उसको न खोले। यह एक प्रकार की सौगन्ध है।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई दूसरा मनुष्य इसको खोले अथवा पढ़ेगा उसको उतना पाप लगेगा जितना कि अकबर को साढ़े चौहत्तर मन यज्ञोपवीत धारियों के बध करने पर लगा था। ज्ञानवान हिन्दू अब तक बराबर इस सौगन्ध की आन मानते हैं।

राजपूत मर मिटे। अकबर युद्ध के मैदान में खड़ा हुआ इस भयानक दृश्य को देख रहा था, उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। चित्तौड़ को विजय करके मैंने क्या पाया। हीरे मोतियों के बदले मुरदों और हड्डियों के ढेर हाथ आये। प्रजा के बहादुर शूरमाओं की लोथें हाथ आईं। बसे हुए नगर के स्थान में जला हुआ, उजड़ा हुआ नगर हाथ आया। अभी वह इन विचारों में डूबा हुआ था, कि कुछ यवन सिपाहियों ने एक हथियार बन्द अल्पायु राजपूत को अकबर के सामने पेश किया। जिसके हाथ बँधे हुए थे और जिससे शोभा बरस रही थी, आँखें कबूतर के खून की तरह लाल हो रही थीं।

अकबर ने पूछा, "तू कौन है और ऐसे भयङ्कर समय में यहाँ क्यों आया है।"

उसने उत्तर दिया, "मैं पुरुष नहीं स्त्री हूँ। अपनै स्वामी की लोथ खोजने के लिये यहाँ आई हूँ।"

अकबर—तेरा नाम क्या है?

स्त्री—मेरा नाम लाजवन्ती है।

अकबर—तू कहाँ रहती है ?

लाजवन्ती—मेरा घर डोंगरपुर में है।

अकबर—चित्तौड़ और डोंगरपुर के बीच में तो बड़ा फ़ासला है। तू यहाँ क्यों और कैसे आई ?

लाजवन्ती—मैंने सुना कि चित्तौड़ में जौहर होने वाला है। मेरा पति इस खबर को सुनकर पहले ही लड़ने के लिए चला आया था। मुझको पीछे से पता लगा। मैं भी उस बात की इच्छुक थी कि मुझे सौभाग्यवती राजपूतनियों के साथ चिता पर जलने का अवसर मिलेगा। परन्तु मेरे यहाँ पहुँचने से पहले सब कुछ हो चुका था, इसलिये मैं अपने स्वामी का लाश को रण-भूमि में खोज रही थी कि आपके अत्याचारी यवन सिपाहियों ने मुझे कैद कर लिया।

अकबर—तू मुझको जानती है ?

लाजवन्ती—हाँ, आपका नाम अकबर है, और आप हमारे कर्म-धर्म के शत्रु हैं।

अकबर—क्या तेरे मन में शंका नहीं है जो इस प्रकार निर्भयता से बातचीत कर रही है ?

लाजवन्ती—मनुष्य को भय केवल उस समय तक रहता है जब तक उसको प्राण प्यारे हैं। मेरी जान देर से निकल चुकी है, मुझको किसका भय है ?

अकबर—तूने कैसे जाना कि तेरा स्वामी इस लड़ाई में ज़रूर मर गया है। सम्भव है कि उसने भाग कर अपने प्राण बचा लिए हों।

लाजवन्ती—आपका कथन सर्वथा मिथ्या है। सच्चा राजपूत युद्ध से कभी नहीं भागता, यह आपकी भूल है। मुझको अटल विश्वास है कि मेरा पति राजपूत है और वह कभी युद्ध से भागने वाला नहीं है।

अकबर—तेरा उसके साथ कब विवाह हुआ था?

लाजवन्ती—मेरी अभी केवल बरिच्छा (मंगनी) हुई थी। विवाह की अभी तक नौबत नहीं आई थी कि आपने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया और मेरे प्राणपति इस युद्ध में बलिदान हो गए।

अकबर को यह सुनकर और आश्चर्य हुआ कि उसका अभी विवाह भी नहीं हुआ केवल मंगनी हुई है और वह ऐसे पति के साथ भी जलकर भस्म होना चाहती है। उसका हृदय सहानुभूति (हमदर्दी) के भाव से भर गया। अकबर ने समझाते हुए कहा, "अच्छी लड़की। अभी जब कि तेरा उसके साथ विवाह भी नहीं हुआ तो तेरा पति क्यों कर हो सकता है? तू उसके साथ अपने आप को चिता में भस्म न कर। तू अपने घर को लौट जा, तूने अभी इस दुनिया का कुछ नहीं देखा, तेरा विवाह किसी और राजपूत के साथ हो जायेगा।"

अकबर के मुख से इन शब्दों को सुनकर लाजवन्ती के क्रोध की सीमा न रही। उसने अपने दांत पीस कर कहा, "बादशाह क्या आपको ईश्वर ने इसीलिए बल दिया है कि आप किसी अबला कन्या की बेइज्ज़ती करें।"

अकबर उसके इन शब्दों को सुनकर काँप उठा। उसका हृदय पहले ही व्याकुल हो रहा था। उसने कहा, "लड़की मैं तुझको बेइज्ज़त करना नहीं चाहता। केवल तेरे भले के लिए मैंने तुझे समझाया था। यदि तू नहीं मानती तो तेरी इच्छा, परन्तु मुझे आशा नहीं कि इन लाशों में तुझको अपने मंगेतर की लाश मिल सके। यदि तुझमें साहस हो तो जाकर खोज ले।

अकबर की आज्ञा पाते ही सिपाहियों ने उसकी मुश्कें खोल दीं। और वह निर्भय राजपूतनी उस भयङ्कर मैदान में घूम-घूम कर अपने पति की लाश को ढूढ़ने लगी। कुछ देर के पश्चात् एक नवयुवक को लोथों के बीच से उठाकर अलग ले आई और किले के भीतर से लकड़ियाँ लाकर अपने हाथ से चिता तैयार की। पति की लोथ को सम्मान के साथ उस पर रख दिया। फिर पाँच बार उसकी प्रदक्षिणा (फेरे) देकर चकमक से आग निकाल कर अग्नि दी। चिता जलने लगी तो आप भी उसके बीच में देवी की तरह जा बैठी। पति के सिर को प्रेम के साथ गोद में रख लिया और चुपचाप सबके देखते देखते जलकर भस्म हो गई। अकबर और उसकी संपूर्ण सेना

के लोग यह दृश्य देखते रहे। उनके आश्चय का ठिकाना नहीं था। उनके हृदयों में जो-जो विचार उस समय उत्पन्न हो रहे थे उनका वर्णन कौन कर सकता है।

जब वह पूर्णतः जल कर भस्म हो गई तो अकबर के एक यवन कवि (शायर) ने यह शेर कहे—

शेर—हमूच हिन्दू ज़न कसे दर आशकी, मरदाना नेस्त।
सोख्तन बर शमा महफ़िल, कार हर परवाना नेस्त॥
जोशशे इश्क अस्त ईआं किस्सओअफ़साना नेस्त।
दादने जां अस्त ईजां बाज़िए तिफ़लाना नेस्त॥

मृगनयनी

मृगनयनी अपने समय की अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी। उसका स्वभाव साधुओं का सा था। उसका जीवन बहुत सादा था। उसके नेत्र हिरन के से सुन्दर थे, इसी कारण उसका नाम मृग-नयनी प्रसिद्ध था। वह गुजरात के किसी राजघराने की थी और ग्वालियर के तोमर वंश वाले महाराजा मानसिंह से विवाही थी। कहते हैं कि इस देवी में कुछ इस प्रकार की ख़ूबियाँ कूट-कूट कर भरी हुई थीं कि जो साधारण मनुष्यों में प्रायः नहीं देखी जाती। एक ओर यदि वह ईश्वर की भक्त थी, तो दूसरी ओर संसार के काम काजों को समझने की भी अच्छी योग्यता रखती थी। जिस समय वह हथियार बाँध कर घोड़े की पीठ पर बैठती थी तो यह प्रतीत होता था कि मानो एक मनोहर चित्र है। तीरंदाजी में अद्वितीय समझी जाती थी, तलवार चलाने में यह हाल था कि बड़े-बड़े शूर-वीर उसका लोहा मानते थे। पति-भक्त और पति-परायण थी। मानसिंह इसको अपनी आँखों का तारा समझता था। सेना के सिपाही इसकी वीरता और साहस पर बलिहार थे। अनेक बार उसने संग्राम भूमि में वीरता का परिचय दिया था। मानसिंह यद्यपि बड़ा लड़ाका और योधा था, तथापि उसकी सेना के परिचालन का काम मृगनयनी के हाथों

में रहा करता था। मृगनयनी सम्राट की समकालीन थी। वह समय बड़ा ही टेढ़ा और विलक्षण था। अकबर ने प्रायः सब हिन्दू राज्यों को अपने आधीन कर लिया था, परन्तु इस स्त्री ने कुछ ऐसा यत्न कर रक्खा था कि ग्वालियर का राज यदि स्वाधीन समझा जाता था तो वह अकबर के आधीन भी नहीं समझा जाता था।

मृगनयनी में यह गुण तो थे ही परन्तु वह गान विद्या में भी अद्वितीय निपुण थी। रात्रि को सोने से उठने के पश्चात् हाथ में तम्बूरा लेकर प्रतिदिन ईश्वर की स्तुति के गीत गाया करती थी। जिस समय वह गाने लगती तो जड़ वस्तुएँ तक ईश्वर प्रेम में मस्त हो जाती थीं। मनुष्य तो फिर भी मनुष्य है, इसके कोकिल कण्ठ के प्रभाव से पशु-पक्षी तक मोहित हो जाते थे, टकटकी बाँधकर उसकी ओर देखने लगते थे।

इस स्त्री का दावा था कि केवल संगीत सुनाकर वह असाध्य रोगों का इलाज कर सकती है। उसकी समझ में कोई ऐसा रोग नहीं था जो गाने से अच्छा न हो सके। गन्धर्व विद्या को वह सबसे अधिक प्रिय समझती थी। लोग इस बात को सुन कर आश्चर्य मानेंगे परन्तु सत्य यह है कि गान विद्या सर्वोपरि है।

एक बार उसके भतीजे को जो गुजरात का रहने वाला था, राज-यक्ष्मा का रोग था, और बचने की कोई आशा न थी। वैद्य और हकीम उसके रोग असाध्य बता चुके थे। जब वह चारों

ओर से निराश हो गया तो मृगनयनी से मिलने के लिए ग्वालियर के किले में आया। वार्तालाप के समय मृगनयनी ने उससे पूछा, "तूने गन्धर्व विद्या की सहायता से भी इलाज किया है या नहीं?" उसने कम समझ मनुष्यों की तरह उत्तर दिया, "जहाँ महान् वैद्य हकीमों की कुछ नहीं चलती वहाँ केवल आवाज क्या काम कर सकती है।"

मृगनयनी ने कहा, "तू नादान है, तुझे पता नहीं कि नाद विद्या मनुष्य की शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता पर कितना प्रभाव डाल सकती है। आज से तू यह कर कि जिस प्रातः काल मैं भजन में बैठूँ उस समय तू चुपचाप भजन मंदिर में आकर बैठ जाया कर। देख तो सही, किस प्रकार रोग अच्छा नहीं होता।"

उस दिन से भतीजा प्रति-दिन प्रातः काल के समय मंदिर में जाने लगा। इसके अतिरिक्त उसका और कोई इलाज नहीं हुआ, जो औषधि आदि वह पहले करता भी था वह भी उसने अब बन्द कर दी। मृगनयनी के भजन उसके हृदय पर अपना प्रभाव डालने लगे और थोड़े ही काल में उसके हृदय में नवीन और पवित्र भाव उत्पन्न होने लगे। उसकी पहले की अवस्था बदल गई और धीरे-धीरे आत्मिक आहार पाने से वह न केवल निरोग्य हो गया, वरन् बहुत दिनों तक सुख पूर्वक जीवित रहा। जिन-जिन वैद्यों और हकीमों ने उसकी चिकित्सा करने

से इन्कार कर दिया था अब वे उसकी इस दशा को देखकर बड़े विस्मित हुए।

गान विद्या में वह शक्ति है कि निराशा में डूबे हुए जनों को आशा, मुरदा मनुष्यों को जीवन, थके मांदों को सुख और विश्राम तथा दुखित हृदयों को चैन मिल जाता है। जिस विद्या में यह गुण हों, मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी समझ सकता है कि उसकी बदौलत स्वास्थ्य का प्राप्त कर लेना सर्वथा संभव है। सारी दुनियाँ वास्तव में एक प्रकार की रागिनी है। राग विद्या को जो मनुष्य अच्छी तरह जानता है वह सब कुछ कर सकता है।

लंका नामक प्रसिद्ध इतिहासकार जो शाहजहाँ के समय में हुआ है, उसने अपने प्रसिद्ध इतिहास में इस देवी की विशेषताओं के विषय में वर्णन करता है—"राजा मानसिंह के कई रानियाँ थीं। उनमें मृगनयनी सबसे अधिक सुन्दर थी, और प्रत्येक गुण में सबसे श्रेष्ठ समझी जाती थी। गाने में उसका पूरा-पूरा अधिकार था। यदि मिथ्या न माना जाय तो गान विद्या में वह अपने काल की पूर्ण गुरु थी। उस समय उससे बढ़कर गान विद्या का ज्ञाता कोई दूसरा मनुष्य नहीं दिखायी देता था।"

मानसिंह को भी गान और वाद्य (बाजा) का चाव (शौक) था। वह भी कभी-कभी रानी के साथ मिलकर स्वयं भी गाया करता था। और कभी केवल उसके ही (रानी के) कोकिल कण्ठ से गान विद्या का अमृत पान किया करता था। कदाचित

यही कारण होगा कि वह अपनी और सब दूसरी रानियों से बढ़ कर उसको ही प्यार किया करते थे।

गान विद्या में एक राग है जिसको सब लोग दीपक राग कहते हैं। उसके प्रभाव की इतनी प्रशंसा की जाती है कि जिस नगर में वह गाया जाय और गाने वाला यदि उसका पूर्ण ज्ञाता हो तो उस नगर में सम्पूर्ण बुझे हुए दीपक अपने आप जल उठते हैं। इस राग के जानने वाले दुनियाँ में कम उत्पन्न होते हैं। रानी मृगनयनी इस राग को जानती थी। दीपक राग के गाते समय हृदय में एक विशेष प्रकार की विरहाग्नि उत्पन्न होती है, और जैसे दीपक की बत्ती के जलने के साथ-साथ तेल की आवश्यकता होती है, वैसे ही दीपक राग के गाने के साथ इस प्रकार दूसरे रागों का प्रबन्ध रहता है जो दीपक राग से उत्पन्न हुई अग्नि को शान्त करते रहें। अन्यथा गायक रोगी होकर मर जाता है। ऐसे ही मनुष्य के विषय में किसी कवि ने कहा है—

इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से।
आशिक़ का सीना जल गया, सीने के दाग़ से॥

एक व्यक्ति ने दीपक राग सीख कर उसकी शान्ति का प्रबन्ध किये बिना ही उसे गाना आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि उसके शरीर पर छाले पड़ गये। पीप बहने लगी। अनेक औषधि करने पर भी उसका रोग दूर नहीं हुआ। उसने

लोगों के द्वारा रानी की प्रशंसा सुनी और उसके पास आकर अपनी विपद् का वृत्तान्त सुनाकर सहायता की प्रार्थना की। मृगनयनी दयावान थी। उसने उसको ठहरने की आज्ञा दी। कुछ दिन निरन्तर मेघ-मल्हार राग गाकर उसके जले हुए घावों को शान्त कर दिया। वह व्यक्ति सदैव चिल्लाता रहता था, क्योंकि उसके शरीर में हर समय आग सी प्रतीत होती थी। अन्त में रानी मृगनयनी ने दीपक राग के द्वारा उसे सर्वथा नीरोग्य कर दिया, और वह रानी का यश गाता हुआ अपने घर लौट गया।

यह आदर्श स्त्री बड़ी ही गुणवान् थी। मृगनयनी ने अपनी तीव्र बुद्धि की सहायता से कई प्रकार के बाजे भी निर्माण किए। सितार के वर्तमान परदों से अधिक दो परदे इसी ने निकाले थे। इसके अतिरिक्त उसने अनेक प्रकार के सङ्गीत भी रचे थे। गूजरी राग तो उसी का माना जाता है। इस राग की अनेक विधियाँ हैं। यथा भील गूजरी, माल कश्मीरी, इत्यादि २। राजा मानसिंह इन गीतों का बड़ा प्रेमी था।

कहते हैं कि अकबर बादशाह के दरबार में तानसेन नामक एक बहुत हो सुयोग्य गायक था। वह जाति का ब्राह्मण था और हरिदास साधु का शिष्य था। परन्तु वह किसी कारण से यवन हो गया था। उसने रानी की गान विद्या की प्रशंसा सुनी और उनके मुख से राग सुनने का इतना इच्छुक हुआ कि

दिल्ली से चलकर ग्वालियर पहुँचा और राजा मानसिंह की सहायता से रानी का सङ्गीत सुनने की चेष्टा की। राजा मान-सिंह ने रानी मृगनयनी को उसके उद्देश्य से अवगत किया। रानी ने उसको सङ्गीत सुनाने से इनकार किया, क्योंकि वह हिन्दू धर्म से पतित हो चुका था। किन्तु जब उसने अत्यन्त नम्रता से विनती की तो मानसिंह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और पति के आज्ञा के पालन के भाव से रानी ने फिर उसे अपना संगीत सुनाया। तानसेन रानी के गाने को सुनकर वाह वाह कर उठा और अपने भाग्य की सराहना करने लगा कि "मेरे धन्य भाग जो किसी गायन विद्या विशारदा रानी के मुख से मैं सङ्गीत सुन सका।" यह उसके जीवन की अन्तिम घटना थी क्योंकि वह फिर ग्वालियर को छोड़कर और स्थान पर नहीं जा सका। वहाँ रहते हुए अपने प्राण त्याग किए। ग्वालियर में तानसेन कब्र अब तक वर्तमान है। सैकड़ों यात्री और दर्शक उसको देखने के लिए अब भी आया करते हैं।

जो लोग यह समझते हैं कि स्त्रियाँ मूर्ख और अल्प बुद्धि होती हैं वह बड़ी भूल करते हैं। उनको स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दुओं में कोई ऐसी विद्या नहीं है जिसमें स्त्रियों ने कमाल न कर दिखाया हो। हम तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हैं कि बहुत सी विद्याओं और कला-कौशल की निर्माण-कर्ता हमारे

यहाँ स्त्रियाँ ही हुई हैं। विद्या और गुण की रूप स्वयं स्त्री देवी हैं, जिनका नाम सरस्वती है।

मृगनयनी बड़ी ही गुणवान्, धर्मात्मा, पतिव्रता और विदुषी स्त्री थी और इसी स्वभाव तथा योग्यता की स्त्रियों से इस देश की शोभा थी। ऐसी ही स्त्रियों ने हमारे देश का नाम संसार में उज्ज्वल कर रक्खा था।

चन्द्रकला

मारवाड़ के राजा गज ने अपने बड़े पुत्र उमराव सिंह को प्रजा की अप्रसन्नता के कारण राज्य से निकाल दिया। उमराव सिंह ने शाहजहाँ बादशाह के दरबार में आश्रय लिया। उमराव सिंह के बहुत से राजपूत साथी भी दिल्ली चले आए थे। कुछ काल के पश्चात् उमराव सिंह की बादशाह के साथ अनबन हो गई, परिणाम स्वरूप वह बादशाह से लड़ा। उसके वीर साथियों ने उसके लिए अपने आपको बलि कर दिया।

उमराव सिंह के सारे साथी मर गए। केवल गङ्गा सिंह नामक एक राजपूत बाकी रह गये जो किसी विशेष कारण से दिल्ली में नहीं थे। इस घटना के कुछ दिनों बाद वह दिल्ली में राजपूतों के मुहल्ले में आकर रहने लगे। उनमें राजपूतों के सब गुण थे, केवल एक दोष यह था कि वह सुख के जीवन को अधिक प्रिय समझते थे, और इसी दोष ने उनको अपस्वार्थी बना दिया था।

गङ्गा सिंह का विवाह राम सिंह नामक एक शूरमा क्षत्रिय की कन्या के साथ हुआ था। जिसका नाम चन्द्रकला था। यह लड़की बहुत रूपवान थी, और अपने पिता की इकलौती पुत्री थी। गङ्गासिंह ने समझा था कि उसके साथ विवाह कर

लेने से बहुत कुछ धन हाथ लगेगा और उनका जीवन आराम से व्यतीत होगा। परन्तु विवाह करने के पश्चात् ही उनको अपनी भूल ज्ञात हो गई। राम सिंह साधारण स्थिति के मनुष्य निकले, और उन्होंने अपनी पुत्री को दहेज में बहुत थोड़ा धन दिया। इसलिये गङ्गा सिंह की आशा पर पानी फिर गया।

परन्तु चन्द्रकला रूपवती स्त्री होने के अतिरिक्त धार्मिक, पतिव्रता, और सुसभ्य थी। उसने अपने प्रेम और सेवा से गङ्गा सिंह को अपने वशीभूत कर लिया।

धीरे-धीरे विवाह हुए दस वर्ष बीत गए। चन्द्रकला के पेट से पाँच लड़के उत्पन्न हुए, जिनके पालन-पोषण का कार्य वह स्वयं करती थी। इस काल में चन्द्रकला के रूप में भी कमी आ गई। गंगा सिंह परिश्रमी और समय को पहचानने वाले नहीं थे, इसलिये उन्होंने अपना सारा धन नष्ट कर दिया, उनके घर में कुछ नहीं रह गया था। परन्तु अपनी आदत के अनुसार उसी प्रकार सैर, शिकार और इष्ट मित्रों के साथ घूमा करते थे। उन्होंने कभी स्वप्न में भी विचार नहीं किया कि उनके घर में धन नहीं है। घर का काम-काज बराबर उसी प्रकार चलता रहा।

गंगा सिंह बहुधा घर में नहीं रहते थे। उनकी स्त्री ने अनेक बार उनसे काम-काज करने और घर का काम संभालने की राय दी। परन्तु उन्होंने न तो काम-काज किया और न तो अपनी सम्पत्ति की ओर विचार किया, और न अपनी स्त्री की

पूछ की कि घर का काम-काज किस प्रकार से चलता है। वह बराबर ऐय्याशी के जीवन में लगे रहे। चन्द्रकला उनके लिए अच्छे-से-अच्छे कपड़े बनवा देती और आप फटे पुराने कपड़े पहने रहती थी। लड़कों की भी अवस्था इतनी अच्छी नहीं थी पर उस आलसी मनुष्य की आँखें नहीं खुलीं। वह हमेशा अपस्वार्थी बने रहे। चन्द्रकला को गंगा सिंह की ओर से केवल इतनी शान्ति थी कि उन्होंने अपनी और कुक्रियाओं के साथ अपने आपको व्यभिचारी नहीं बनने दिया था। जिसको स्त्रियाँ बहुत घृणा की दृष्टि से देखती हैं। उसके मन में इतनी बात का विचार अवश्य रहता था कि उसका पति न तो लड़कों का कुछ ख्याल करता है और न स्त्री का ही ध्यान रखता है। यह बात बहुत ही अनुचित थी, परन्तु क्या करती। धैर्य के साथ सब कुछ सहन करती थी। वह रात-दिन पति की प्रसन्नता का ध्यान रखती थी।

एक दिन जब गंगा सिंह बाहर जाने को उद्यत हुए और उनको रुपयों की नितान्त आवश्यकता हुई तो अपनी स्त्री से रुपये देने को कहा। रुपये घर में कहाँ रक्खे थे? परन्तु चन्द्र-कला ने किसी-न-किसी प्रकार कुछ रुपये ला दिये।

गंगा सिंह ने हँसकर कहा, "मालूम होता है तू अपने पिता राम सिंहजी से रुपये लाई है।"

चन्द्रकला—हाँ, मेरे पिताजी ने दिए हैं।

गंगा सिंह—वह प्रायः तुमको देते रहते होंगे।

चन्द्रकला—माता-पिता के सिवाय और कौन सन्तान की फ़िक्र करता है।

गंगा सिंह—मैंने भूल की, मैं चिर काल से तेरे पिता के पास नहीं गया, अब मैं उनके पास जाकर कृतज्ञता का प्रकाश करूँगा।

चन्द्रकला—वह इस बात से बहुत प्रसन्न होंगे। इसके सिवाय पिता हमेशा ही अपने पुत्र-पुत्रियों को दिया ही करते हैं। इसके लिये कोई उनका उपकार नहीं मानता। इसका आप किसी से ज़िक्र न करें, इसको लेवें और अपना काम करें। यदि कुछ और आवश्यकता हो तो वह भी बतावें, मैं उसको भी प्रस्तुत करूँ।

गंगा सिंह इतना अपस्वार्थी बन गये थे कि उन्होंने अधिक पूछना उचित नहीं समझा। रुपयों को लेकर अपनी आदत के अनुसार सैर व शिकार के इरादे से बाहर चले गये।

चन्द्रकला घर में अकेली रह गई। वह कभी पति की निष्ठुरता पर आँसू बहाती, कभी अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल समझ कर चुप हो जाती। परन्तु उसका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ता गया। रूप रंग भी बदल चला। तो भी वह रात दिन घर के काम धन्धों में लगी रहती थी। लड़कों का पालना सहज काम नहीं है। बेचारी सब कुछ करती थी। घर में दो दासियाँ थीं। वह उसके स्वभाव के अनुकूल थीं। उनको

भी इसके साथ बड़ा प्रेम था। यह भी जिस प्रकार से होता था उसकी किसी आज्ञा को भंग नहीं करती थीं।

गंगा सिंह के घर में कुछ भी नहीं रह गया था, परन्तु घर की बाहरी दशा में किंचित फ़र्क़ नहीं आने पाया था। और विशेष कर जब गंगा सिंह घर में होते थे तो खान-पान आदि की सामग्री सब उसी प्रकार की उत्तम होती थी जैसे किसी धनवान मनुष्य के घर में हुआ करती है। यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होगा कि यह सब धन कहाँ से आता था? राम सिंह ने अपनी कन्या को कभी सहायता नहीं दी। चन्द्रकला ने बातचीत करते समय अपने पिता के नाम से असली हाल को छिपाया था। बात यह थी कि वह और उसकी दोनों बाँदियाँ रात के समय चरखा काता करती थीं, और बाजार में सूत बेच कर उसके मूल्य से गुजारा किया करती थीं। उस समय हिन्दू घरानों में भी सूत कातने का रिवाज़ था, और साधारण मनुष्य अपने घरों के काते हुए सूत के कपड़े पहनते थे। उससे अच्छी आमदनी होती थी। परन्तु वह बहुत मितव्ययिता से रहती थी। यही उसके निर्वाह का रहस्य था।

गंगा सिंह कुछ काल के पश्चात् घर लौट आये और अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ कई दिन रहे। फिर उनका जी उचट गया, और चन्द्रकला से कहने लगे, "मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, मैं फिर बाहर जाऊँगा।"

चन्द्रकला—जो आपके जी में आवे सो करें आपको क्या कभी मेरी फिकर होती है ?

गंगा सिंह—तू तो भली चंगी है, मैं तेरे लिए क्या फिकर करूँ।

चन्द्रकला—यह सत्य है, परन्तु इन लड़कों की तो आपको चिन्ता करनी चाहिये।

गंगा सिंह—तू किसलिये है ? लड़कों का पालन पिता नहीं किया करता, माता करती है।

चन्द्रकला चुप हो गई। उसने फिर कोई बात नहीं की और गंगा सिंह फिर सैर व शिकार के लिए चले गये। यह सैर व शिकार की आदत उन्होंने उमराव सिंह से सीखी थी। इसमें वह कुछ राजपूती शान समझते थे।

जब शिकार से उनका जी उचट गया तो वह फिर अपने घर पर लौट कर आये और दिल्ली में रहने लगे। इस बार उन्होंने अपने मित्रों से सुना कि चन्द्रकला रात को चरखा कातकर बाजार में सूत बिकवाती है। इतना सुनना था कि वह आग बबूला हो गये। चरखा कातकर बाजार में सूत बिकवाना वह अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। अपने मित्रों के पास से उठ कर वह घर पर आये। उनकी आँखें क्रोध से लाल-पीली हो रही थीं। लड़के उनकी सूरत देखकर सहम गए। बाँदियाँ समझ गईं कि कुछ दाल में काला अवश्य है। वह अपनी स्त्री के कमरे में गये, और उससे कहने लगे, "तूने मेरी

इज्ज़त ख़ाक में मिला दी। आजतक किसी राजपूती ने ऐसा काम नहीं किया था।"

चन्द्रकला बोली, "मैंने ऐसा कौन सा काम किया है कि जिसको आप इतना बुरा समझते हैं?" उसने इतना ही कहा और लज्जा से अपनी गर्दन नीची कर ली।

गंगा सिंह—कमबख़्त! तू मुझसे पूछती है कि तूने ऐसा कौन सा काम किया है कि जिसको मैं अनुचित समझता हूँ? क्या तू स्वयं नहीं जानती कि आज सारी दिल्ली में इस बात की चरचा हो रही है कि गंगा सिंह के घर में सूत का व्यापार हो रहा है और चन्द्रकला चरखा कातकर सूत बेचती है?

चन्द्रकला—यह बात तो सत्य है।

गंगा सिंह—स्वीकार करती है कि यह सत्य है?

चन्द्रकला—हाँ, मैं स्वीकार करती हूँ कि सत्य है।

गंगा सिंह—और तू दाम लेकर बेचती है?

चन्द्रकला—हाँ, मैं दाम लेकर सूत को बिकवाती हूँ।

गंगा सिंह—भला तू ऐसा क्यों करती है?

चन्द्रकला—केवल आपके लिये।

गंगा सिंह—तो क्या मैंने तुझसे जो रुपये लिये थे वह सूत के दाम थे।

चन्द्रकला—जी हाँ, मैंने जो रुपये आपको दिये थे वह सूत के दाम थे।

गंगा सिंह—तूने मेरी आबरू को मिट्टी में मिला दिया। ज़रा भी मेरा लिहाज नहीं किया। मैं आज तेरे चरखे और सूत को आग लगा दूँगा। मैं कदापि तेरे इस अपराध को क्षमा न करूँगा। भला मैं अब राजपूतों को मुख कैसे दिखलाऊँगा। तूने मेरी नाक कटवा दी।"

चन्द्रकला बहुत गम्भीर स्त्री थी, अपने मन को वश में रखने की शक्ति उसमें बहुत थी। जब से वह गंगा सिंह के घर में व्याह कर आई थी, कभी गंगा सिंह को उत्तर नहीं दिया था। हमेशा आँख नीचे करके उसको सुन लिया करती थी। इस बार उसको अनुचित प्रतीत हुआ। उसने सिर उठा कर कहा, "मैंने यह सब काम आपके लिये किये हैं। मुझको आपके घर में आए हुए आज दस वर्ष हुए हैं, आपने कौन सा धन मुझे सौंपा था। दो-चार सौ रुपये कब तक चलते हैं, लड़कों को भूखा देखकर, आपको व्याकुलता में पाकर मैंने यह काम स्वीकार किया था। आपने किंचित भी मेरी ओर ध्यान न दिया और न लड़कों की सुधि ली। भला बताइये तो सही यदि मैं ऐसा न करती तो क्या करती? खैर, जो कुछ होने को था हो चुका। अब आप अपना घर-बार संभाल लीजिये। मैं बीमार हूँ। मृत्यु मेरे जीवन को समाप्त करने वाली है।"

इतना कह कर वह पति के पास से चली गई। गंगा सिंह विस्मित रह गये। क्या सचमुच वही चन्द्रकला है जो पहले

स्वभाव की बहुत नम्र थी ? वह हक्का-बक्का हो गये और बैठक में चले आये। उस दिन गंगा सिंह के घर में भोजन नहीं बना, सब भूखे सो रहे, प्रातःकाल गंगा सिंह ने बच्चों के रोने की आवाज सुनी। एक लड़का हिंडोले में पड़ा रो रहा था, दूसरे भूमि पर पड़े हुए माई-माई पुकार रहे थे परन्तु माई कहाँ थी।

गंगा सिंह ने चन्द्रकला के बारे में बाँदियों से पूछा, परन्तु किसी ने कुछ पता न दिया। गंगा सिंह के ऊपर शोक का पहाड़ टूट पड़ा, और आँखों से आँसू बहने लगे। वह रोते हुए राम सिंह के घर पर गये और पूछा कि यहाँ चन्द्रकला आई है या नहीं ? राम सिंह ने कहा, "यहाँ वह नहीं आई है, और वह भी अपनी बेटी के गुम हो जाने से बहुत दुखी हुए।"

वह फिर अपने घर पर आये और पास पड़ोस वालों से पूछने लगे। दो एक राजपूती स्त्रियों ने बताया कि वह अमुक मार्ग की ओर जा रही थी। यह सुनकर गंगा सिंह भी उसी मार्ग की ओर भागे। चन्द्रकला के अन्तिम शब्द उसके हृदय में तीर की तरह चुभ रहे थे, "मैंने सब कुछ आपके लिये किया, दस वर्ष हुए घर में आई, दो चार सौ रुपये कब तक चल सकते हैं। लड़के भूखे थे, आप परेशानी में थे, आपको किसी की फ़िक्र नहीं थी, यदि मैं सूत न कातती तो क्या करती, मैं बीमार हूँ, मौत मेरी जिन्दगी का फैसला कर रही है। इत्यादि-इत्यादि।"

उनकी आँखों के आगे की दुनियाँ अँधेरी हो गई। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की। उनके सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। वह पछताने लगे, आखिर वह राजपूत थे। अपने आपको लानत-मलानत करने लगे और फिर रोते पीटते हुए दौड़े और कहने लगे कि यदि अबकी बार तू मुझको मिल जाय तो मैं ऐसी भूल न करूँगा। मैंने तेरी क़दर नहीं की।

इसी प्रकार कहते हुए वह कई मील चले गये। राह में आदमियों से पूछते जाते थे और उनके कहने पर कि कहीं आगे एक स्त्री जा रही है वह मिलने की आशा लिए हुए दौड़े चले जा रहे थे।

कई घण्टे बीत गये। जब दिल्ली से पश्चिम कई कोस आगे निकल आये तो एक तालाब की ओर उनकी दृष्टि गई और उन्होंने तुरन्त चिल्लाकर कहा मैंने पा लिया, यह मेरी ही चन्द्रकला है और इस प्रकार कहते हुए वह झपट कर उसकी ओर गये। चन्द्रकला वृक्ष के नीचे बैठी हुई अपने कपड़े कस कर बाँध रही थी ताकि डूबने पर मरने के पश्चात् उसकी लोथ नंगी न हो जाय। गंगा सिंह ने उसके हाथ पकड़ लिए। दोनों का मिलाप एकदम विचित्र था।

चन्द्रकला ने इस अवस्था में भी पति से मिन्नत खुशामद नहीं करवाई। उसने आप ही गंगा सिंह से कहा, "चलिये घर चलें, लड़के दुखी हो रहे होंगे।"

गंगा सिंह ने कहा, "देवी ! तू धन्य है, साक्षात् लक्ष्मी है, मैंने महापाप किया, मैं अज्ञान में था, मेरी आँखें बन्द थीं। इस कारण से मुझसे अपराध हुआ, तू मुझको क्षमा कर दे।"

चन्द्रकला ने आँसू पोंछ कर उत्तर दिया, क्षमा करने की क्या बात है। आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपकी दासी हूँ, मेरी केवल इतनी ही इच्छा है कि आप सुखी रहें, और इसी कारण से मैं मन, वचन, कर्म से आपके हित के लिए काम करती रही। आप सचमुच मुझको प्यार करते हैं और मुझको इससे अधिक और किसी बात की अभिलाषा नहीं है।

दोनों संध्या के समय घर आए। राम सिंह बच्चों को लिये उनकी राह देख रहे थे, उनको देखते ही सब-के-सब प्रसन्न हो गए और फिर खुशी के साथ रहने लगे।

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस घटना के पश्चात् गंगा सिंह का स्वभाव पूर्णतः बदल गया। उनके घर में चरखा कातना बन्द हो गया। उनको स्वयं अपने घर का ध्यान रहने लगा और चन्द्रकला के दिन सुख से व्यतीत होने लगे।

डोंगरपुर की ठकुरानी

डोंगरपुर मेवाड़ में है। जिस समय की यह बात है उस समय डोंगरपुर की गढ़ी के स्वामी ठाकुर राम सिंह थे।

डोंगरपुर की गढ़ी एक सुन्दर पहाड़ी पर बनी हुई थी। उसके चारों ओर बहुत से वृक्ष लगे हुए थे। कहीं-कहीं पानी के झरने भी बह रहे थे। ठाकुर राम सिंह आराम के साथ तकिया लगाए हुए बैठे थे। वह चुपचाप बैठे हुए थे। परन्तु रूप, रंग, आँख, चितवन और होठों से तलमलाहट प्रगट होती थी। और यह प्रतीत हो रहा था कि उनके मन में विशेष प्रकार की चिन्ताएँ उठ रही हैं, उनकी आयु पचास वर्ष की थी। परन्तु वह हृष्ट-पुष्ट शरीर के थे।

कुछ समय बाद उनका नौकर सामने आया और हाथ बाँध कर बोला "महाराज! राणा साहब का एक सवार दरवाजे पर खड़ा है और कहता है कि आप से मिलना चाहता हूँ।"

राम सिंह—"कौन राणा?"

अभी यह शब्द उनके मुख से समाप्त भी नहीं होने पाए थे कि एक हथियार-बन्द राजपूत हाथ में भाला लिए हुए उनके सन्मुख आ खड़ा हुआ और प्रणाम के पश्चात् कहने लगा—"ठाकुर साहब क्षमा कीजिएगा, यह समय कुछ इस प्रकार का

है कि हम फौजी आदमियों को कभी-कभी अप्रिय और अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करने पड़ते हैं।"

राम सिंह—"मैं आपके अभिप्राय को समझ नहीं सका, आप विस्तार पूर्वक बतलावें।"

राजपूत—"एक मनुष्य राजमहल से भाग आया है। हम उसका पीछा करते हुए चले आए हैं, यहाँ आकर वह कहीं छिप गया है। अब उसका पता नहीं चलता। पहाड़ी के इधर उधर के जंगल की खाक छान मारी। परन्तु वह हाथ नहीं लगा। संभवतः वह आपकी गढ़ी के किसी कोने में छिपा हुआ है। और इसी कारण से हम सब लोग आपकी गढ़ी की तलाशी लेना चाहते हैं।"

राम सिंह ने कुछ उत्तर नहीं दिया, विस्मय और चिन्ता के समुद्र में कुछ देर तक डूबे रहे। सवार ने फिर कहा—"ठाकुर साहब! हम लोगों को आपकी इज्जत का ख्याल है। परन्तु हम विवश हैं क्योंकि चित्तौड़ की गद्दी पर इस समय राणा बनबीर सिंह बैठा हुआ है और उसकी कठोरता को आप अच्छी तरह जानते हैं। आपकी गढ़ी को चारों ओर से राणा की फौज ने घेर रक्खा है। मैं आपके पास इस कारण से आया हूँ कि आपको न केवल सूचना दूँ बल्कि सुगमता के साथ देख भाल कर सिपाहियों को दूसरी ओर चले जाने की आज्ञा दूँ, क्या आप इस बात के लिये तैयार हैं।"

राम सिंह ने कहा—"मैं तैयार होने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता हूँ। राणा बनबीर के समय में हम लोगों को समझता ही कौन है। तलाशी तो आप अवश्य लें परन्तु मेरी स्त्री कल से बहुत बीमार है उस मकान में आपके जाने से उसे कष्ट होगा।"

सवार ने कहा—"मैंने साफ़ तौर पर आप से कह दिया है कि हमको इस प्रकार की आज्ञा मिली हुई है। इससे अधिक हम और कुछ नहीं कर सकते।"

राम सिंह ने कहा अच्छा, "चलो देख लो अगर कोई मनुष्य यहाँ आकर छिपा है तो उसको कैद कराने में मैं कोई कोताही न करूँगा।"

सवार ने कहा—"ऐसे मामले में ऐसी जल्दी मुख से बात न निकालनी चाहिये, लेकिन खैर चलिये मैं ही आपकी गढ़ी के प्रत्येक स्थान को देखूँगा।"

सवार और राम सिंह दोनों गढ़ी में खोज करने लगे। बैठक देखी, स्नान घर देखा, हयशाला देखी, गोशाला देखी, भंडार घर देखा, सेनागार देखा, दरबार देखा, परन्तु कहीं किसी मनुष्य का पता न लगा। अन्त में सवार राम सिंह के महल की ओर चला। महल में ठकुरानी बीमार पड़ी हुई तड़फ रही थीं। संयोग से उस समय उनके कमरे में कोई बाँदी तक भी नहीं थी। दो मनुष्यों को कमरे की ओर आते देख कर बीमार ठकुरानी उठ खड़ी हुईं और क्रोध में आकर कहने

लगीं, "यह कैसी निर्लज्जता है। आप क्यों बेगाने आदमी को साथ लिए हुए यहाँ आ रहे हैं ? राम सिंह ने संक्षेप के साथ सारा वृत्तान्त कह सुनाया। स्त्री ने कहा, "बहुत अच्छा आप पूर्ण रूप से तलाशी ले लीजिये।"

सवार ने अच्छी तरह से कोना-कोना देखा और जब कोई मनुष्य न मिला तो वह उस कमरे से निकल कर आगे बढ़े।

इतने में राम सिंह की निगाह अंगरखे के एक बन्द की ओर गई, जिसमें सलमें सितारे लगे हुए थे। बन्द को देख कर वह चकित हो गये और जल्दी से उसको उठा कर अपनी जेब में रख लिये। और जब राणा का सवार तलाशी लेकर गढ़ी के बाहर निकल गया, तो उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से पूछा, क्या सचमुच यहाँ कोई मनुष्य छिपा हुआ है ?

ठकुरानी का नाम चन्द्रमुखी था। वह सचमुच बड़ी रूपवती थी। आयु भी अभी सोलह वर्ष से अधिक नहीं थी। उन्होंने मुस्कुरा कर कहा, "आपने कैसे जाना कि यहाँ कोई मनुष्य छिपा हुआ है।"

राम सिंह ने चन्द्रमुखी को वह रेशमी बन्द दिखाया जो उनको भूमि पर पड़ा हुआ मिला था। चन्द्रमुखी फिर बोली "क्या स्त्रियों के पास बन्द नहीं होते ?"

राम सिंह को ठकुरानी के इस प्रश्न से आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर कहा, "देखो जिस जगह तुम्हारा पलंग बिछा हुआ है उस

जगह लकड़ी की एक दीवार बनी है। और उसका सम्बन्ध एक सुरंग से है, और वह पहाड़ से बहुत दूर तक चली गई है। मेरे सिवाय और किसी को उसका पता नहीं है। तुमने किस प्रकार उसको जान लिया है।

चन्द्रमुखी के मुख पर कुछ भी घबड़ाहट के लक्षण प्रगट नहीं हुए। उसको कुछ भी पता नहीं था कि राम सिंह नियत से इस प्रकार की बातें कर रहे हैं। उसने बेपरवाही से कहा "आप खोज कर लेवें यदि कोई छिपा है तो आपही मिल जायगा।"

अभी पति पत्नी दोनों की वार्ता समाप्त नहीं होने पाई थी कि नौकर ने ठाकुर राम सिंहजी को फिर एक सरकारी अफ़सर के आने की खबर सुनाई, उनके साथ वह सवार भी था जो पहले खोज कर गया था। राजपूत अपनी बेइज्ज़ती सहन नहीं कर सकते। परन्तु इस अवसर पर विचित्र दशा थी। उनको कुछ भी क्रोध नहीं आया। राम सिंह ने अफ़सर से पूछा "आप क्या चाहते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे साथी ने साधारण रूप से तलाशी की थी अब मैं स्वयं तलाशी करके अपनी तसल्ली करूँगा कि राणा का शत्रु आपकी गढ़ी में छिपा है या नहीं। गढ़ी की फिर दूसरी बार तलाशी ली गई। राम सिंह मेवाड़ का एक सरदार था इसलिये फौजी अफ़सर को उनके सम्मान का भी ध्यान रखना पड़ता था। कई घंटे तक बराबर तलाशी होती रही। अन्त में उन्होंने कहा "ठाकुर साहब आप हम लोगों को माफ़

कीजियेगा, विवश थे, राणा की आज्ञा टाल नहीं सकते थे, हमने व्यर्थ आपको कष्ट दिया।"

यह कहकर वह दोनों वहाँ से चले गये, परन्तु उनका भ्रम अभी तक दूर नहीं हुआ था इसलिए सेना के कुछ सिपाहियों को वहाँ छोड़ दिया और आप आगे बढ़ गए।

उनके चले जाने के पश्चात् ठाकुर राम सिंह फिर अपनी पत्नी के पास आये। उनके मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न हो रहे थे। उन्होंने अपनी स्त्री से फिर पूछा, चन्द्रमुखी सच बता यह कौन आकर छिपा है? चन्द्रमुखी भाँप गई कि उसके पति के मन में क्या बात समाई हुई है। उसने मुस्कुरा कर कहा, "आप क्यों बार-बार ऐसे प्रश्न करते हैं? राम सिंह ने कहा, "सुन्दरी! इसमें किंचित सन्देह नहीं है कि मैं तुझको प्यार करता हूँ और इस प्रेम ने ही मुझको अंधा बना कर तेरे साथ विवाह करने को उद्यत किया। मैंने बड़ी भूल की क्योंकि मेरी आयु पचास वर्ष के लगभग है और तू पन्द्रह सोलह वर्ष से अधिक नहीं है। सचमुच यह बड़ी अनुचित बात थी परन्तु मैं प्रेम के कारण अन्धा था। मैंने कल रात को स्वयं देखा कि एक मनुष्य गढ़ी की ओर आ रहा है, ईश्वर जाने कहाँ और किधर छिप रहा कि मुझको उसका कुछ पता नहीं लगा। मैं इसी फिकर में व्याकुल हूँ और इसीलिए बार-बार तुझसे पूछता हूँ। यदि तुझको उसका कुछ पता मालूम हो तो कृपा कर बता

दो ताकि मैं उसको सुगमता के साथ यहाँ से निकल जाने का प्रबन्ध कर दूँ।"

चन्द्रमुखी के होंठ तिलमिलाने लगे। उसने पूछा, "आप क्यों ऐसा करेंगे ?"

राम सिंह—मैं इसलिए ऐसा करूँगा कि जिसमें मेरी और तेरी बदनामी न हो।

चन्द्रमुखी—क्या आपको इस बात का निश्चय है कि चन्द्र-मुखी पतित और नीच है ? आप मेरे स्वामी हैं इसलिए आप जो चाहे सो कहें, आपको सब बातों का अधिकार है, यदि किसी दूसरे के मुख से यह शब्द निकले होते तो मैं कदापि सहन न करती।

राम सिंह घबड़ा उठे क्योंकि उन्होंने सचमुच बड़ी भूल की थी। इस प्रकार की बातचीत क्षत्राणी के सन्मुख उन्हें नहीं करनी चाहिए थी ? वह लज्जा से पानी-पानी हो गये। और गर्दन नीची करके कहने लगे "आखिर वह कौन था जिसको मैंने अपनी आँखों से गढ़ी में घुसते हुए देखा था।"

चन्द्रमुखी—क्या आप सचमुच उसको देखना चाहते हैं ?

राम सिंह—हाँ, मैं सचमुच उसको देखना चाहता हूँ।

चन्द्रमुखी—परन्तु एक शर्त पर उसे देख सकेंगे ?

राम सिंह—वह क्या है ?

चन्द्र मुखी—वह यह है कि आप तीन बार झुक कर उसको प्रणाम करें और श्रीमान् वमहाराज कहकर सम्बोधन करें।

राम सिंह यह सुनकर बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने कहा, "निर्लज्ज! तू अपने बूढ़े पति के साथ हंसी करती है। यह सिर सिवाय महाराणा चित्तौड़ के और किसी के सम्मुख तीन बार न झुकेगा, और न इस मुख से सिवाय महाराणा के और किसी दूसरे मनुष्य को श्रीमान् व महाराज कहूँगा। तू बहुत देर से मेरे साथ मखौल कर रही है परन्तु स्मरण रख शान्ति की भी कोई सीमा होती है।"

यह बात-चीत जिस कमरे के भीतर हो रही थी उसी कमरे में सुरंग का दरवाजा था, जिसका हम ऊपर वर्णन कर आये हैं। जब राम सिंह अपनी क्रोध से भर गये और अपनी स्त्री को बुरा भला कहने लगे तो सुरंग का दरवाजा खुल गया और उसके भीतर से एक हथियार बन्द राजपूत एक छोटे अल्पायु बच्चे को अपनी गोद में लिये हुए निकला और लड़के को सामने खड़ा करके कहा, "देखो राम सिंह, यह तुम्हारा असली राणा है। यह राणा साँगा का अन्तिम पुत्र उदय सिंह है। इसको मैं बनबीर के पंजों से छुड़ा लाई हूँ। और इस चिन्ता में हूँ कि कोई इसकी रक्षा करे।"

अधिक कहने सुनने की आवश्यकता नहीं थी। उदय सिंह के रूप रंग से ही प्रकट होता था कि वह राणा साँगा का पुत्र है। उनका सारा आकार उसमें वर्तमान था। राम सिंह ने तीन बार झुककर प्रणाम किया और अपनी धर्मपत्नी के कथनानुसार उनको महाराज और श्रीमान् के शब्द से सम्बोधित किया। फिर वह

उस हथियार बन्द राजपूत से सविस्तार वृत्तांत पूछने लगे। उसने अपना हाल बताते हुए कहा "ठाकुर साहब मैं पुरुष नहीं स्त्री हूँ। मेरा नाम पन्ना है। मैं महाराणा उदय सिंह की दाई हूँ। राणा साँगा के मरने के पश्चात् विक्रमादित्य को गद्दी पर बैठाया गया और जब वह भी मर गया और जब राणा के घराने में कोई योधा पुरुष गद्दी पर बैठने वाला न रहा तो सरदारों ने सलाह करके बनबीर को गद्दी पर बैठा दिया। उन्होंने लोभ के मारे राणा साँगा की सम्पूर्ण सन्तान को बध कर डाला। उनकी इच्छा है कि मेरी सन्तान सदैव चित्तौड़ की गद्दी पर राज्य करे। उदय सिंह साँगा का सबसे छोटा पुत्र है। परसों मुझको खबर मिली कि बनबीर इसको भी मारना चाहता है। मैंने उदय सिंह को तो एक टोकरे में रख कर नाई के हाथ चित्तौड़ से बाहर भेज दिया और अपने छोटे लड़के को उसी जगह पर लिटा दिया। रात के समय बनबीर आया और उदय सिंह के धोखे में मेरे लड़के को मार डाला। मैं राणा साँगा की अन्तिम सन्तान को लेकर भाग निकली। आज तीसरा दिन है इन पावों को आराम लेने का अवसर नहीं मिला। न कहीं अन्न-जल प्राप्त हुआ। स भय के मारे कि इसको कोई हानि न पहुँचे, मैं रात दिन भागती हुई जंगल और पहाड़ लाँघती हुई यहाँ पहुँची हूँ। आपकी ठकुरानी साहिबा के स्वभाव को मैं पहले से जानती हूँ। मैं पहले भी इस गढ़ी में आ चुकी हूँ। मैंने इस नन्हें बालक को ठकुराना जी की गोद में डाल दिया ताकि शत्रु इसको हानि न

पहुँचा सकें। ईश्वर ने यहाँ तक तो इसकी रक्षा की। अब यह आपका काम है कि आप इस गाढ़े समय में अपने राणा की रक्षा करें। इतना कहने के पश्चात् पन्ना ने राजकुमार उदय सिंह को ठाकुर राम सिंहजी की गोद में बैठा दिया।

उदय सिंह का वृत्तान्त राजस्थान के इतिहास में बहुत ही हृदय-विदारक है। ठाकुर राम सिंहजी और दाई पन्ना दोनों कुछ देर तक प्रेम के आँसू बहाते रहे।

राम सिंह बड़ी देर तक सोच सागर में डूबे रहे। उनको वहाँ अपनी स्त्री के साथ अपनी नादानी और बदसलूकी पर पश्चाताप था, वहाँ उसकी राजभक्ति, पतिव्रता भाव और चतुरता को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पहले उन्होंने पन्ना और राजकुमार के लिए उत्तम से उत्तम भोजन बनवाया, और जब वह भली-भाँति भोजन तथा विश्राम कर चुके तो विनीत भाव से समझा कर कहने लगे कि मेरे बड़े धन्य भाग थे जो राणा संग्राम सिंहजी का पुत्र मेरे घर पर आया। परन्तु हे पन्ना! तुम जानती हो कि डोंगरपुर एक छोटी सी रियासत है। चित्तौड़ की तुलना में उसकी कोई हकीकत नहीं है और वह चित्तौड़ के बहुत समीप है। इसके सिवाय वनवीर के आदमी अब तक गढ़ी के आस-पास घूम रहे हैं। इसलिए उचित है कि तुम इस सुरङ्ग से निकल कर कोमलनेर के किले में चले जाओ। वहाँ का किलेदार आशा है कि तुम्हारी सहायता करेगा। पन्ना ने स्वीकार किया।

रात के समय चन्द्रमुखी पति की आज्ञा लेकर राजकुमार उदय सिंह और पन्ना दाई को सुरङ्ग के बाहर तक पहुँचा आई और किसी को कानों कान खबर तक नहीं होने दी।

जब पन्ना उदय सिंह को साथ लिए बहुत दूर निकल गई तो चन्द्रमुखी अपने महल को लौट आई और राम सिंह के चरणों पर अपना सिर रख कर कहने लगी, "प्राणनाथ, मुझसे बड़ा अपराध हुआ जो मैंने पहले ही सब वृत्तान्त से आपको अवगत नहीं करा दिया और आपको व्यर्थ ही भ्रम में पड़ कर कष्ट उठाना पड़ा। मैं अपने अपराध के लिए लज्जित हूँ, आप जो चाहे मुझको दण्ड दें।"

राम सिंह के हृदय से चन्द्रमुखी के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम भाव उत्पन्न हो गया था। उन्होंने कहा "देवी! तू धन्य है, तेरी राज भक्ति को देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। तूने जो कुछ किया है सो समयानुसार किया है, मैं तेरे इस कार्य से कदापि रुष्ट नहीं हूँ। वरन् मैं तुझको अपने कुल की देवी समझता हूँ।"

जब तक ठाकुर राम सिंह इस संसार में जीवित रहे तब तक कभी भूल कर भी उन्होंने अपनी धर्म पत्नी को कष्ट नहीं दिया, और वह बन्द जो उनको भूमि पर पड़ा हुआ मिला था बहुत दिनों तक राम सिंह के घराने में स्मारक रूप में (बतौर-यादगार) रक्खा रहा।

जोधाबाई

मुग़ल-सम्राट अकबर की राजनीति यद्यपि भारत के उस काल की राजनीति थी, जब भारत में चारों ओर घोर युद्ध, वैमनस्य और अराजकता की स्थिति थी। फिर भी ऐसे विकट समय में अकबर की राजनिति अति सफल हुई, यह न केवल अकबर की तात्कालिक अथवा सामयिक सफलता थी, अपितु आज भी भारतीय राजनिति में अकबर की उदार और मित्रतापूर्ण नीति की बहुत्यायी प्रशंसा की जाती है। अकबर की नीति स्पष्टतः हिन्दु-मुस्लिम के परस्पर सम्बन्धों और सम्बन्ध भी घनिष्टतम हों, इसी उद्देश्य से अकबर ने राजपूतों या अन्य हिन्दुओं के साथ अपने वंश से जो पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित किये, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध आमेर की राजकन्या जोधाबाई से उसका स्वयं का विवाह सम्बन्ध था। जोधाबाई एक राजकन्या तो थी हीं, इससे भी बढ़कर वह एक ऐसी महिला भी थीं, जिसका मूल्यांकन मुगल-कालीन इतिहास में अति ऊँचे स्तर पर किया जाता है। जोधाबाई अकबर की उस राजनीति की एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि सिद्ध हुई, जो हमारी राष्ट्रीय नीति के लिए अभी भी अनुकरणीय है।

राजस्थान, उसकी भूमि, निवासियों और संस्कृति का इतिहास यद्यपि बहुत सीमित है—स्पष्टतया भारतीय इतिहास के मध्यकाल के कुल दो तीन सौ वर्ष ही राजस्थान के इतिहास के

वे पृष्ठ हैं, जो राजस्थान के लिये तो सर्वोच्च ऐतिहासिक महत्व रखते हैं, साथ ही, भारतीय इतिहास में यही काल राजस्थान के इतिहास की गौरव गाथाओं से परिपूर्ण है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल का सबसे महत्वपूर्ण समय अकबर के काल का है, और सम्राट अकबर की राजनीति में जोधाबाई का सम्भवतः सर्वाधिक प्रमुख हाथ था।

वीर राजस्थान ने भारत के मध्यकालीन इतिहास में अनेकानेक रत्न दिये हैं और उनमें जोधाबाई एक ऐसी रमणी रत्न हैं, जिसका अपना ऐतिहासिक महत्व है और यही महत्व हमारी आज भारत की राष्ट्रीय नीति का मुख्य प्रेरक तत्व है।

जोधाबाई मारवाड़ की राजकन्या थीं और १५६६ ई० में उनकी मृत्यु हुई। कोई-कोई इसी समय से उदय सिंह को मारवाड़ के राज्य का मिलना मानते हैं, और कोई-कोई कि चन्द्रसेन के पराजित होने के समय से उदय सिंह के सिंहासनारोहण करने के साथ ही सम्पूर्ण रूप से बादशाह के अधीन हो गया। यहाँ तक कि अकबर का विशेष प्रियपात्र होकर उसने अपनी बहिन जोधाबाई तक को अकबर के कर कमलों में अर्पण कर दिया। इस घटना से सारे राजस्थान में जैसे-जैसे उदय सिंह की बदनामी फैलने लगी, वैसे ही वैसे उदय सिंह बादशाह का अधिकाधिक अनुग्रह-भाजन होता गया। अकबर ने जोधाबाई को अपनी बेगम बनाकर उस पर असीम प्रीति और उसके साथ असीम सहानुभूति दिखलाई। अकबर इस्लाम धर्म की सब बातों को नहीं मानते थे। उन्हें हिन्दुओं की भी बातें पसन्द थीं। हिन्दुओं की अपेक्षा

करना, या उन पर अन्याय करना, उन्हें नहीं अच्छा लगता था। इसी उदार नीति के वशीभूत होकर अकबर ने जोधाबाई को स्वधर्म प्रति-पालन में कभी बाधा नहीं दी। जोधाबाई के इच्छानुसार उसके लिए उन्होंने एक उत्तम महल बनवा दिया था। आगरे के किले के भीतर जोधाबाई का हिन्दू महल देखने से उनके स्वधर्मानुराग और अकबर की उदारता का अच्छा प्रमाण मिलता है।

जोधाबाई को लोगों ने सलीम की बेगम दूसरी जोधाबाई मानकर भारी भूल की है। कितने ही इतिहास-वेत्ता पंडितों का भी यही मत है। किन्तु यह मत अत्यन्त सन्देहपूर्ण मालूम होता है। इस बखेड़े की जड़ टाड साहब बहादुर हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में जोधाबाई पर टिप्पणी देते समय जोधाबाई को शाहजहाँ की माता लिखा है। यहाँ पर टाड साहब ने दो भूलें की हैं। पहले तो उन्होंने जहाँगीर के स्थान पर शाहजहाँ लिखा, दूसरे जोधाबाई को उनकी माता कहा। बहुत लोग शाहजहाँ शब्द को संशोधित करके जहाँगीर कर डालते हैं। संभव है, इसी तरह लोग जोधाबाई को जहाँगीर की माता कहने लग गये हों। मैलेसन साहब ने अपनी पुस्तक "अकबर" में भी इसी बात का उल्लेख किया है। परन्तु मेवाड़ और मारवाड़ के इतिहास में जहाँगीर का जोधाबाई के पुत्र होने का कुछ भी उल्लेख नहीं है। इन इतिहासों में शाही घराने की हिन्दू बेगमों के गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्रों का उल्लेख है। किन्तु पूर्वोक्त बातों का उनमें कहीं भी पता नहीं है।

फ़रिश्ता ने सलीम का जन्म वृत्तान्त स्पष्ट रूप से लिखा है। उसके देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्रियतमा बेगम सुलताना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। बादशाह के कई सन्तान शैशव अवस्था ही में मर चुके थे। इससे शेख सलीम की कृपा और उसके आशीर्वाद से पुत्र के चिर जीवित होने पर उसका नाम अकबर ने सलीम ही रक्खा।

फ़रिश्ता के देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्यारी बेगम सुलातान्ता का ही पुत्र था। जोधाबाई का सुलताना नाम से इतिहासों में कहीं भी परिचय नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त, इस सम्बन्ध में और भी एक आपत्ति उपस्थित होती है।

फ़रिश्ता के कथनानुसार सलीम ने ६७७ हिजरी, अर्थात् १५६६ ई० में जन्म ग्रहण किया। यही मत निज़ामुद्दीन अहमद का भी है। राजस्थान में उसी साल मालदेव का देहान्त लिखा हुआ है। उस समय उदय सिंह सिंहासनासीन हो चुके थे कि नहीं, सो भली-भाँति ज्ञात नहीं होता। सिंहासनासीन हो जाने के बाद उन्होंने जोधाबाई को बादशाह के हाथ में सौंपा था। मालदेव के जीवितावस्था में जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ नहीं हुआ। १५६६ ईसवी में सलीम का जन्म जोधाबाई के गर्भ से होना किसी भाँति प्रमाणित नहीं होता। परन्तु ब्राइस साहब के द्वारा अनुवादित जहाँगीर के आत्म-चरित के अनुसार, जहाँगीर का जन्म ६७८ हिजरी में हुआ था। इसी हिजरी में जोधाबाई के गर्भ से जहाँगीर का जन्म होना असम्भव नहीं कहा जा सकता। किन्तु निज़ामुद्दीन अहमद ने सलीम के

जन्म-समय की कविता का अर्थ ६७७ लगाया है। यदि ६७७ हिजरी में सलीम का उत्पन्न होना मान लिया जाय तो उक्त आत्म-जीवनी का अनुवाद ठीक नहीं कहा जा सकता। जहाँगीर ने अपनी जीवनी में अपने अन्यान्य भाई बहनों का जन्म-वृत्तान्त लिखा है। किन्तु अपनी माँ के नाम परिचय उसने कहीं भी नहीं दिया। फ़रिश्ता और निजामुद्दीन अहमद् इत्यादि के ग्रन्थों में भी लिखा है कि "सलीम और मुराद् के जन्म होने के बाद जोधपुर के युवराज चन्द्रसेन ने बादशाह की अधीनता को स्वीकार किया।" इससे स्पष्ट बोध होता है कि सलीम के जन्म होने के बाद् जोधाबाई का विवाह हुआ था।

जोधाबाई बीकानेर के राजा राय सिंह की कन्या थीं। बीकानेर का राजवंश भी राठौर घराने में है। राय सिंह ने मुगल सम्राट का सेनापति होकर अनेक स्थानों में असीम वीरता और पराक्रम दिखाया था। अहमदाबाद के शासनकर्ता मिर्जा महमूद को उसने द्वन्द युद्ध में मारा था। उसने अच्छे गौरव को प्राप्त किया। उसके उस कार्य से प्रसन्न होकर अकबर ने उसकी कन्या के साथ शाहजहाँ सलीमा का विवाह कर दिया। राय सिंह की यह अनुपम कन्या इतिहास प्रिय पाठकों के निकट जोधाबाई के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। फ़रिश्ता और जहाँगीर की आत्म-जीवनी में इस विवाह का उल्लेख है। जोधाबाई सलीम की प्रियतमा थीं। भुवनमोहिनी मेहरुन्निसा को बेगम बनाने पर भी जहाँगीर ने जोधाबाई के कथनानुसार ही मिर्जा जयसिंह को आमेर का राज्य प्रदान किया था। जहाँ-गीर बहुत सी बातों में जोधाबाई के परामर्शानुसार ही काम

करता था। जब तक मेहरुन्निसा (नूरजहाँ) शाही महल में नहीं आई थी, तब तक जहाँगीर जोधाबाई के प्रति अत्यन्त अनुरक्त था। नूरजहाँ के आने पर जोधाबाई के प्रति जहाँगीर का पूर्वानुराग कुछ कम हो गया था। ज्योतिर्मयी नूरजहाँ को पाकर जहाँगीर सिर्फ जोधाबाई को ही नहीं भूला किन्तु अपने आपको भी वह भूल गया। जोधाबाई के अतिरिक्त शाही महलों में और भी कई राजपूत बेगमे थीं। उनमें से एक अम्बर के राजा बिहारी मल की कन्या और दूसरी मारवाड़ की एक राजपुत्री थी। बिहारीमल की कन्या से खुसरो का जन्म हुआ और अकबर के मंत्री आज़िम खाँ की लड़की खुसरो से व्याही गई। अकबर के देहान्त होने पर राजा मानसिंह और आज़म खाँ सलीम के बदले खुसरो को बादशाह बनाने की चेष्टा में थे, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। सलीम की दूसरी बेगम मारवाड़ की राजकुमारी के गर्भ से खुर्रम उत्पन्न हुआ था।

यहाँ तक जो कुछ लिखा गया उससे सिद्ध है कि जोधाबाई जोधपुर की राजकन्या नहीं, बीकानेर की राजकन्या थीं। इस विषय में कर्नल टाड ने भी कुछ कम भूलें नहीं की हैं। उनका कथन है कि जहाँगीर का ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान परवेज़ मारवाड़ की किसी राजकुमारी से और दूसरा पुत्र खुर्रम अम्बर की राजकुमारी से उत्पन्न हुए थे। टाड साहब की उक्त दोनों ही बातें भ्रमपूर्ण हैं। क्योंकि परवेज़ किसी हिन्दू बेगम के गर्भ से नहीं उत्पन्न हुआ था और खुर्रम की माता जोधपुर की राजकुमारी (उदयसिंह की कन्या) थीं।

—:०:—

कुछ सम्मतियाँ

(श्री सुमित्रानन्दन पंत, इलाहाबाद)

श्री दिनेशकुमार शर्मा लिखित राजपूत वीर रमणियों के वृत्तान्त रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणा का उद्रेक करनेवाले हैं। भाषा में प्रवाह तथा प्रसाद है। ऐसी आदर्श नारियों की गाथाएँ पढ़कर चारित्रिक बल की उन्नति हो सकेगी और हमें अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास जाग्रत हो सकेगा—इसी दृष्टि से मैं इन साहसिक स्त्रियों की जीवन घटनाओं का 'हमारी माताएँ' शीर्षक इस पुस्तिका के रूपमें स्वागत कर रहा हूँ और इसके उत्साही युवक लेखक को बधाई देता हूँ।

—सुमित्रानन्दन पंत

डा० राजबली पाण्डेय, प्रिंसिपल, कालेज आफ इन्डोलाजी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय—

श्री दिनेशकुमार शर्मा की "हमारी माताएँ" नामक पुस्तक उनका पहला प्रयास है, फिर भी अपने विषय, भाषा, शैली और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से यह सुन्दर कृति है। बालक के जन्म और संस्कार दोनों में माता का स्थान अद्वितीय है। इतिहास प्रसिद्ध माताओं का जीवन चरित्र भी बालकों के ऊपर स्वस्थ और प्रेरक प्रभाव डालने में अनुपम है। श्री दिनेशकुमार की यह रचना इस दिशा में एक सफल चरण है। मैं कामना करता हूँ कि इनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित हो और समाज में इनकी कृतियों का आदर हो।

—डा० राजबली पाण्डेय